श्रीरामकृष्ण-विवेकानंद भावधारा का एकमात्र हिंदी मासिक

# विवेक शिखा

वर्ष ९ मार्च १९९० अंक- ३

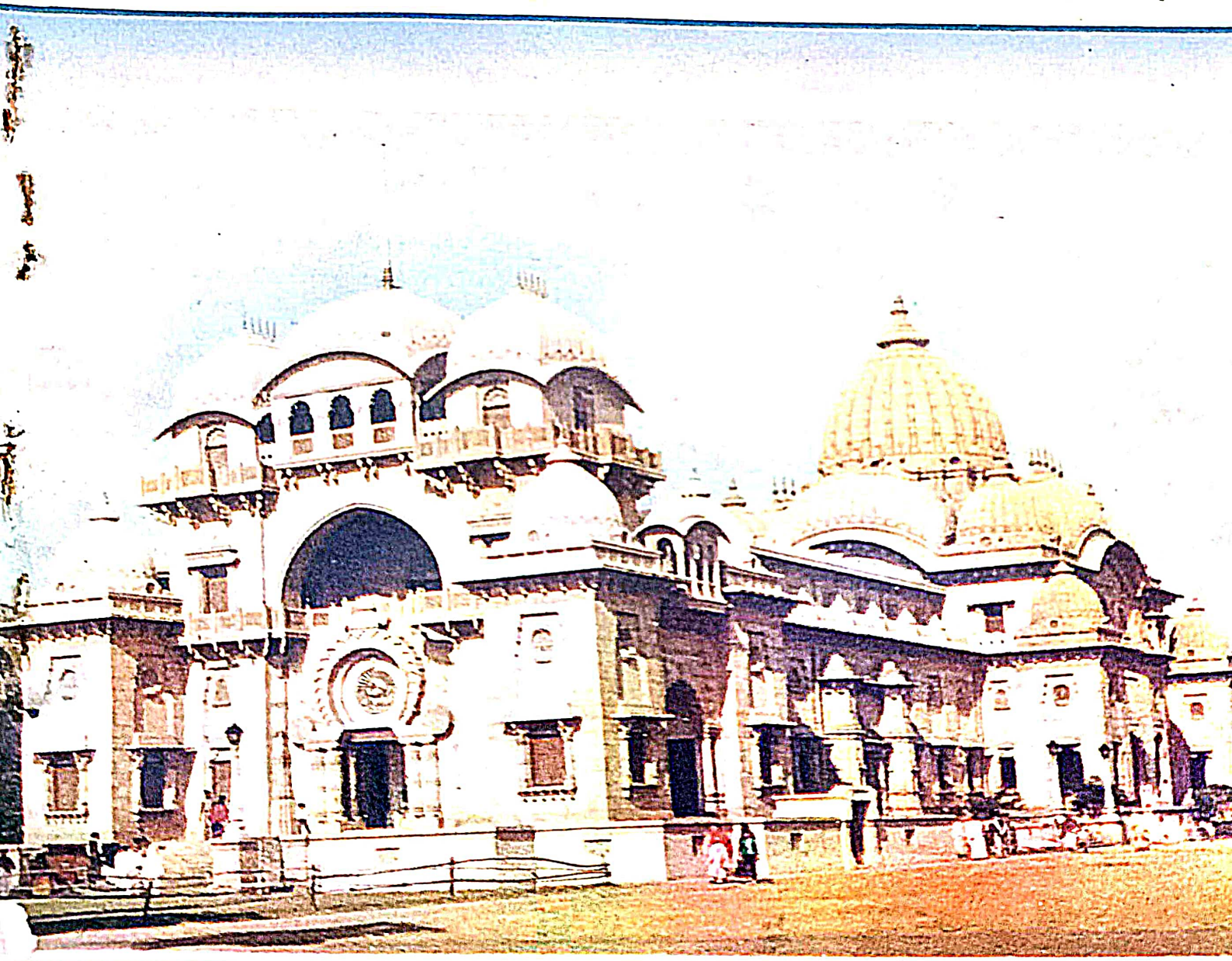

रामकृष्ण निलयम, जयप्रकाश नगर, छपरा—८४१ ३०१ (बिहार)

फार्म—४

(नियम ८ देखिए)

# विवेक शिखा

**प्रकाशक का घोषणा पत्र**

| | |
|---|---|
| पत्रिका का नाम | : विवेक शिखा |
| आवर्तता | : मासिक |
| प्रकाशन का स्थान | : रामकृष्ण निलयम्<br>जयप्रकाश नगर<br>छपरा (बिहार) |
| पत्रिका के स्वामी का नाम | : श्रीमती गंगा देवी |
| क्या भारतीय नागरिक हैं | : हां |
| पता— | : रामकृष्णनिलयम्<br>जयप्रकाश नगर<br>छपरा (बिहार) |
| सम्पादक का नाम | : डॉ० केदारनाथ लाभ |
| क्या भारतीय नागरिक हैं। | : हां |
| पता— | : रामकृष्ण निलयम्<br>जयप्रकाश नगर<br>छपरा (बिहार) |
| मुद्रक का नाम | : श्रीकान्त लाभ |
| क्या भारतीय नागरिक हैं | : हां |
| पता— | : जनता प्रेस<br>नया टोला<br>पटना—८ (बिहार) |

मैं गंगा देवी एतत् द्वारा घोषणा करती हूँ कि ऊपर दी गयी जानकारी मेरी दृष्टि में सही है।

ह० श्रीमती गंगा देवी

प्रकाशक

---

# इस अंक में


| | | पृष्ठ |
|---|---|---|
| १. श्रीरामकृष्ण ने कहा है | | १ |
| २. भजन | सारदातनय | २ |
| ३. अवतार के आविर्भाव का तात्पर्य एवं प्रेमावतार श्री चैतन्य | श्रीमत् स्वामी भूतेशानन्द | ३ |
| ४ श्रीरामकृष्ण और हम | स्वामी ब्रह्मेशानन्द | १० |
| ५. स्वामी विवेकानन्दजी का युग कार्य | काका कालेलकर | १३ |
| ६. हिन्दू समाज पर संकट | स्वामी आत्मानन्द | १६ |
| ७ देवी द्रौपदी | डॉ० आरती श्रीवास्तव | २० |
| ८. विवेक चूड़ामणि | स्वामी वेदान्तानन्द | २४ |
| ९ ईश्वरीय कृपा (कविता) | श्र विवेक कुमार | २७ |
| १० स्वामी अद्भुतानन्द की जीवन कथा | चन्द्रशेखर चट्टोपाध्याय | २८ |

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत

उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किए बिना विश्राम मत लो

# विवेक शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष — ६ मार्च — १९९० अंक — ३

इष्टदेव का हृदय-कमल में रूप अनूप दिखा। निजानन्द में रखती अविचल बिमल 'विवेक शिखा'॥

संपादक
डॉ० केदारनाथ लाभ

संपादकीय कार्यालय :
रामकृष्ण निलयम्
जयप्रकाश नगर,
छपरा—८४१३०१
(बिहार)

सहयोग राशि

| | |
|---|---|
| आजीवन सदस्य | ३०० रु० |
| वार्षिक | २५ रु० |
| रजिस्टर्ड डाक से | ४० रु० |
| एक प्रति | ३ रु० |

रचनाएँ एवं सहयोग - राशि संपादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजने की कृपा करें।

## श्रीरामकृष्ण ने कहा है

( १ )

बालक का मन सोलहों आना अपने वश में रहता है। (उम्र बढ़ने पर धीरे-धीरे मन कई भागों में विभक्त हो जाता है।) विवाह होते ही उसका आठ आना हिस्सा पत्नी के वश में चला जाता है, फिर सन्तान होने पर चार आना उनमें बट जाता है। बचा हुआ चार आना मन माँ-बाप, मान-सम्मान, वेश-भूषा, ठाट-बाट, आदि में लगा रहता है, भगवान में लगाने के लिए कुछ बचता ही नहीं। इसीलिए छोटी अवस्था में ही मन को भगवान् की ओर लगाया जाए तो सहज में भगवान् की प्राप्ति हो सकती है, परन्तु उम्र बढ़ जाने के बाद यह कठिन हो जाता है।

( २ )

एक आदमी आधी रात को उठा और तमाखू पीने की इच्छा से टिकिया सुलगाने के लिए पड़ोसी के घर जाकर दरवाजा खटखटाने लगा। घर में सभी लोग सो गए थे। काफी देर बाद एक व्यक्ति ने दरवाजा खोला और पूछा, "क्यों जी, क्या बात है?" इस आदमी ने कहा, "तमाखू पीना है; टिकिया सुलगाने के लिए थोड़ी अंगार चाहिए थी।" तब पड़ोसी ने कहा, "तुम भी बड़े अजीब हो! अंगार के लिए आधी रात को इतनी तकलीफ उठाकर तुम यहाँ आए, इतना दरवाजा खटखटाया, पर तुम्हारे तो हाथ ही में लालटेन जल रही है!" मनुष्य जो पाना चाहता है वह उसके पास ही है, फिर भी वह उसके लिए नाना जगह भटकता फिरता है।

( १ )

# अब तो जिला दो माँ

—सारदातनय

( चंद्रकौंस—तीनताल )

सुधा वो प्रेम की अपने, मुझे अब तो पिला दो माँ ।
पड़ा भ्रम-मोह में मृत-सा, मुझे अब तो पिला दो माँ ॥
अविद्या से भरा जीवन, जहाँ जाऊँ वहीं बंधन ।
किधर वो खो गयी आत्मा, उसे अब तो मिला दो माँ ॥
शरण दे चरण में अपने, हटा संसार के सपने ।
कली जो बंद है हिय की, उसे अब तो खिला दो माँ ॥
मिटाके पूर्ण मैं-पन को, डुबा दो भक्ति में मन को ।
अभयदायी कमलमुख का, दरस अब तो दिला दो माँ ॥

( २ )

# आज मेरे भाग जागे

—सारदातनय

( वसंत रूपक )

आज मेरे भाग जागे ।
मोह-तम-हर ज्ञान-भास्कर
उदित देखो नयन आगे ॥
दिव्यधाम, समाधिसुख भी,
नाथ जीवहितार्थ त्यागे ।
कर्मरत रहते जगत में
तोड़ने भ्रमजाल - धागे ॥१
अभयमंत्र - निनाद सुन तव
घोर मायानींद भागे ।
दिव्यता जागे स्वयं फिर
दास क्या वरदान मांगे ? ॥२

जन्म तिथि : ११ मार्च के अवसर पर

# अवतार के आविर्भाव का तात्पर्य एवं प्रेमावतार श्री चैतन्य

श्रीमत् स्वामी भूतेशानन्दजी महाराज
परमाध्यक्ष, रामकृष्ण मठ व मिशन

भगवान किसी एक देश विशेष के लिए अवतीर्ण नहीं होते, वह आते हैं समस्त जगत के लिए। और जब आते हैं तब जो आलोक प्रदान करते हैं वह उनके देहावसान के बाद ही स्तिमित नहीं हो जाता, वह सदैव भास्वर रहता है।

भारतवर्ष जिस सनातन धर्म का विश्वासी है उसका रूप अति विचित्र है। एक ही सूर्य की किरणें जैसे चारों दिशाओं में विकीर्ण होती हैं एवं जैसे उसी सूर्य के प्रतिफलन में नाना रंग पाये जाते हैं, ठीक वैसे ही अवतारों के जीवन व शिक्षा के माध्यम से हमें नाना प्रकार के ऐसे आदर्श मिलते हैं जो प्राचीन ग्रंथों में लिखे हुए प्राणहीन आदर्श नहीं होते, वल्कि जो आदर्श जीवन्त होते हैं। उनकी साधना से, उनके प्रभाव से आदर्श प्राणवंत हो उठते हैं। अवतार पुरुषों के आविर्भाव द्वारा प्रमाणित न होने पर शास्त्रों का महत्त्व भी नहीं रह जाता। इसीलिए भगवान को बारम्बार आना पड़ता है। गीता में श्री कृष्ण कहते हैं, मैंने इसी प्रकार परम्परा क्रम से योग को प्रचारित किया।

"स एवायं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः।"

—हे अर्जुन, वह पुरातन योग ही मैं आज तुम्हें बतलाता हूँ।

शास्त्र सनातन है, परन्तु उसी सनातन रूप के भीतर इतना वैचित्र्य है कि साधारण मनुष्य वह समझ नहीं पाता। तभी अवतारगण आते हैं एवं जिस काल में जिसकी विशेष प्रयोजनीयता है, उसी पहलू को अपनी शिक्षा और जीवन के माध्यम से प्रकाशित कर डालते हैं। हमें भारत के इतिहास से यही शिक्षा मिलती है। प्राचीन काल से प्रवहमान भारतीय जीवन-धारा में एक आध्यात्मिक साधना-धारा देखने को मिलती है जिसकी एक विशेष परम्परा है और उसी परम्परा का अनुसरण करके उसकी शाखा—प्रशाखा के विस्तार को हम समझ सकते हैं। स्वामी सारदानन्द ने अपने 'श्री श्री रामकृष्णलीला प्रसंग" ग्रन्थ में इस बात को स्पष्ट करने की चेष्टा की है। प्राचीन वैदिक युग था यागयज्ञ आदि क्रिया काण्ड का युग। यागयज्ञ मनुष्यों के ऐहिक (भौतिक) प्रयोजनों को पूरा करते और पारलौकिक प्रयोजनों को भी पूरा करने का पाथेय उसी में से मिलता था। साधारण मनुष्य चाहता हैं ऐहिक भोग सुख एवं उसी की पुनरावृति के रूप में पारलौकिक सुख स्वर्गादि। स्वर्ग है मनुष्य के ऐहिक सुखों की पराकाष्ठा की कल्पना।इस लोक में हम भोग्य वस्तु का भोग करते हैं, करने के उपरान्त क्लान्ति आती है, और उसमें तृप्ति नहीं होती। इसलिए हम कल्पना करते हैं

कि मृत्यु के बाद भी पुनः एक ऐसा जीवन मिलेगा जिस जीवन में अनन्त भोग होगा एवं जीवन भी अनन्त होगा। इसी कामना से मनुष्य के स्वर्ग की कल्पना हुई। स्वर्ग से हम समझते हैं कि जहाँ जरा-मृत्यु न हो, क्षुधा-तृष्णा न सताये। वहाँ भोग की वस्तुएँ जैसे अनन्त हो, भोगने की क्षमता भी असीम हो। उपनिषद् में कहा है—"न तत्र त्वम् न जरया विभेति"[2] —वहाँ जरा नहीं है, मृत्यु नहीं है। ऐहिक भोग सुख की जो लालसा है उसी के परिणाम स्वरूप ऐसी एक परिकल्पना हमारे मन में आती है। ऐसा कभी हो सकेगा कि नहीं यह हमें पता नहीं परन्तु ऐसी कल्पना, ऐसी आकांक्षा मन में जागती है। क्योंकि मनुष्य नहीं चाहता कि उसका भोग-सुख एक जीवन तक ही सीमित रहे।

राजा ययाति ने समस्त जीवन भोग किया फिर भी तृप्त न हुए, और यौवन समाप्त होने को आया। तब उन्हें कहा गया कि और कोई तुम्हें यौवन उधार में दे सकता है कि नहीं, देखो। उनके पुत्र कुरु ने उन्हें यौवन दिया। पिता ने उसको भी भोगा किन्तु भोगतृष्णा न मिटी, भोग-तृष्णा का अन्त भी न हुआ। तब उन्होंने कहा :

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते ॥[3]

—भोग द्वारा कामना की निवृत्ति नहीं होती, आग में घी डालने से आग जैसे और भड़क उठती है उसी प्रकार भोग के परिणाम स्वरूप कामना वासना और भी बढ़ जाती है। मनुष्य इसी भोग वासना द्वारा अभिभूत होकर ईश्वर को भूलता है, अपनी अन्य सब उच्च आकांक्षाओं को भूलता है। इसलिए शास्त्र ने उन्हें कहा यह तो लौकिक उपायों से सम्भव नहीं है। पर सत्कर्म करो जिससे इस जीवन में न हो तो अगले जन्म में भोग कर सकोगे। इसी कारण मनुष्य याग यज्ञ करता है, स्वर्ग की कामना से। उसके बाद भोग करते-करते मन में विचार उठता है कि इसके उपरान्त क्या? यदि यह समस्त भोग एक समय समाप्त हो जाए तब तो कष्ट की सीमा-परिसीमा नहीं रहेगी। इससे अच्छा होता भोग न करते। यागयज्ञ करने से चिर समय हम भोग कर सकेंगे यह बात भी आपात मनोरम है। गीता ने जिसे 'पुष्पिता वाक्!' कहा है। क्योंकि जो कुछ अर्जन किया जाता है उसका क्षय हो जाता है। जैसे कृषक भूमि कर्षण करके अपनी फसल पैदा करता है, वह फसल खाते-खाते समाप्त हो जाता है। ठीक उसी प्रकार जो कुछ कर्म द्वारा उत्पन्न होता है, चाहे वह स्वर्गादि हो या इस जगत का भोग हो, वह भोगने से क्षय हो जाता है। जो कुछ भी उत्पन्न होता है वह अनित्य है।

कर्मकाण्ड के बाद आया ज्ञानकाण्ड अथवा उपनिषद् का युग। इस युग में हमने देखा कि विचार द्वारा यह समझा गया कि मनुष्य का कल्याण है, त्याग के माध्यम से, न कि भोग द्वारा। उपनिषद् ने उसी त्याग का मन्त्र सिखलाया। केवल ग्रन्थों से नहीं, ऋषियों ने—जो उपनिषद् के वक्ता थे, उनके जीवन से, उनकी शिक्षा से हम समझे कि भोग में तृप्ति नहीं, तृप्ति त्याग में है। परन्तु मानव का ऐसा दुर्दैव है कि उसकी सारी इन्द्रियाँ सब बहिर्मुखी हैं, वह आनन्द-सुख बाहर खोजता है—अन्दर नहीं। बाहर जो सुख हम खोजते हैं उसका एक अन्त है, सीमा है।

किन्तु उपनिषद् की उस त्याग की वाणी को मनुष्य पकड़ में न रख सका। भोगतृष्णा ने उसके ज्ञान को ढक दिया। इसलिए वह अन्य उपायों से, नाना प्रकार के सहज साध्य तरीकों से स्वर्गादि लाभ की चेष्टा करने लगा। वैदिक युग के याग-यज्ञ बहुत कठिन, बहुत समय, श्रम व व्यय साध्य थे। फलतः पौराणिक युग में मानव ने और सरल

उपाय व माना उपासना पद्धति का आश्रय लिया। भोग और योग को मिलाने की चेष्टा की गयी। परिणाम में क्या हुआ ? क्रमशः और अवनति हुई। वैदिक याग यज्ञों की तरह उपासना भी प्राणहीन हो उठी। तब हमें ऐसे पुरुष का प्रयोजन हुआ जो पुनः धर्म भावों में प्राणसंचार कर दें। हमारे इस नीरस धर्म-जीवन में कैसे रस संचार हो, हम उसी का अन्वेषण करने लगे। और तभी भगवान का आविर्भाव हुआ। आये रामचन्द्रजी, आये श्री कृष्ण। युग-युग में भगवान जब भी अवतीर्ण हुए तभी हमारे भीतर प्रेमधर्म का आविर्भाव हुआ।

मनुष्य ऋषियों की तरह उतनी कठोर तपस्या नहीं कर पाता। अवनति को रोक कर पुनः चेतना के स्रोत को उर्ध्वगामी करने के लिए मनुष्य एक सरलतम नया मार्ग ढूँढ़ रहा था, जो उसे प्रेमधर्म के आविर्भाव से मिल गया। हम शायद सोचें कि प्रेमधर्म तो नूतन कुछ नहीं—अति पुरातन है। नारदीय भक्तिसूत्र में, शाण्डिल्य भक्ति सूत्र में एवं भागवत में प्रेम की कथा विद्यमान है। नये सिरे से प्रेम की कथा क्या सुनें ? उसका उत्तर है, शास्त्र में जो सब बातें लिखी हैं उन्हें प्राणवन्त करने के लिए एक अलौकिक जीवन का प्रयोजन होता है। ज्ञात होता है कि जैसे उसी दृष्टान्त की स्थापना के लिए प्रेमावतार श्री चैतन्य का आविर्भाव हुआ। अवतार मात्र का आविर्भाव ही जीव के प्रति प्रेम के कारण से होता है। साधारण मनुष्यों का जन्म होता है अपनी देह के प्रति आसक्ति अथवा कर्मफल भोगने के लिए। जन्म के उपरान्त जन्म बीतता रहता है और कर्म का भार क्रमशः बढ़ता जाता है; इसका कोई अन्त नहीं है। इससे निष्कृति पाने के लिए एक ऐसा सहज साध्य उपाय चाहिए जिसके द्वारा मन की इस प्रवणता को परिवर्त्तित किया जा सके। हम चाहते हैं कि इस जागतिक रूप-रस-शब्द-गन्ध-स्पर्शादि का आस्वादन करते-करते ही जीवन को एक उन्नत धारा में प्रवाहित करें। वैसा कहाँ मिलेगा ? इसी से प्रेमधर्म का उद्भावन एवं इस नयी शिक्षा प्रचार के लिए ही प्रेमावतार गणों का आविर्भाव हुआ। हम भौतिक विषयों में जो आनन्द ढूँढ़ रहे हैं उस आनन्द को पाने का एक दिव्य उपाय उन्होंने अपने जीवन के माध्यम से प्रकट कर दिया जिसे हम अनायास अनुसरण कर सकते हैं। यदि हममें गम्भीर पाण्डित्य, प्रबल तितिक्षा न रहे, दीर्घकाल व्यापी कठोर तपश्चर्या न कर पायें तो क्या हमारे लिए कोई एक सहज सरल उपाय नहीं है ? है क्यों नहीं ? उसी मार्ग को दर्शाने के लिए स्वयं ईश्वर देह धारण करके आविर्भूत होते हैं। सब अवतारों का आविर्भाव जीव को कल्याण मार्ग की ओर आकर्षित करने के लिए है। वह आते हैं अपने कर्म व वाणी के द्वारा युगोपयोगी जो साधन पथ हमारे लिए आवश्यक है उसे दर्शाने के लिए। साधन पथ एक नहीं, अनन्त हैं। परन्तु जिस युग में जो अनुकूल पन्थ है, वे उसी को प्रदर्शित करते हैं।

भागवत में तीन मार्गों का जिक्र आता है - ज्ञान, भक्ति और कर्म। योग की बात अलग से नहीं कही गयी; क्योंकि 'योग' इन्हीं तीनों के साथ सहकारी रूप में कार्य करता है। इनमें से, अधिकारी भेद से, कोई किसी के लिए उपयोगी है, कोई नहीं। भागवत में है :

**निर्विन्नानाम् ज्ञानयोगो न्यासिनामिह कर्मसु।**
**तेष्वनिर्विन्न चित्तानाम् कर्मयोगस्तु कामिनाम्।**[4]

कहा है :—जो अतिशय वैराग्यवान हों एवं अत्यधिक वैराग्य की प्रेरणा से जिन्होंने इह जगत के भोगसुखार्जन रूप कर्म एवं परलोक के स्वर्गादि भोग सुखार्जन कर्म सबका परित्याग किया है, उनके लिए ज्ञान योग श्रेय है। वे विचारशील हैं, विचारों के द्वारा उन्हें इस जगत की नश्वरता का बोध हुआ है। अतः जगत की किसी वस्तु

की ओर उनका आकर्षण नहीं होता । इह जगत का भी नहीं, स्वर्गादि लोकों का भी नहीं। उनके लिए ज्ञान योग ही अनुकूल है। किन्तु ऐसे अधिकारी कितने होते हैं ? अतः अन्य मार्ग की भी आवश्यकता होती है। कहा गया हैं, जो भौतिक विषयों के प्रति वैराग्यवान न हों, जो कामना परायण हों उनके लिए कर्मयोग प्रशस्त है। कर्म का अर्थ है ऐहिक कर्म एवं पारत्रिक कल्याण के कर्म भी। इह जगत में कर्म करके, कांचन व भोग की वस्तु संचय करके भोग किया जा सकता है एवं केवल इहलोक में ही भोग नहीं, याग यज्ञादि कर्म, सत् कर्मादि करके स्वर्ग लोक का भोग भी संचित किया जा सकता है ऐसी जिनकी आकांक्षा होती है वे कर्मयोग का मार्ग पकड़ें यही विधान है। परन्तु सभी मनुष्य तो अत्यन्त कामना परायण नहीं होते, मध्यम श्रेणी के लोग भी हैं। तभी कहा गया है :—

**यदृच्छया मत्कथादौ जातश्रद्धस्तु यः पुमान्।**
**न निर्विन्नो नातिसक्तो भक्तियोगोऽस्य सिद्धिदः ॥**[5]

—देवप्रेरित होकर या पूर्वकृत शुभकर्मों के फल हेतु अथवा ईश्वर इच्छा से जिस प्रकार से भी हो, जिसका भगवान के प्रति, उनकी लीला कथाओं के प्रति श्रद्धा जाग उठे, चाहे वह अतिशय वैराग्यवान न हो, एवं अतिशय विषयासक्त भी न हो— ऐसे मानव के लिए भक्ति योग ही प्रशस्त है। अब यदि हम अपने मन का विश्लेषण करें तो हम साधारणतया थोड़ा बहुत भक्तियोग के अधिकारी हैं। तो क्या यह भक्ति योग हमें मध्यम पथ पर ही रख छोड़ेगा ? थोड़ा भोग, थोड़ा योग इसी प्रकार से क्या हम रह पायेंगे ? कहा है, वैसा नहीं। भक्ति योग का अनुसरण करने को कहा गया है लेकिन जिस अवस्था में भक्तियोग का प्रारम्भ किया गया उसी अवस्था में हमेशा स्थिर रहने की बात तो नहीं कही गयी।

भक्ति दो प्रकार की है साधन भक्ति और साध्य भक्ति। साधन भक्ति है प्रथम अवस्था की बात जब वैराग्य तीव्र नहीं हुआ पर भोग की आसक्ति ने ईश्वर को भी पूरी तरह भुला नहीं दिया। ईश्वर का जीवन, उनकी लीला-कथाओं के प्रति तनिक आकर्षण हुआ तब मन में भक्ति की सूचना हुई। ऐसा व्यक्ति कामना परायण होकर भी भक्त हो सकता है, शायद वह भक्ति शुद्धा भक्ति न हो, शायद वह प्रतिदान की आशा से भगवान की आराधना करता हो, परन्तु उसी भक्ति का अनुसरण करते-करते क्रमशः वह शुद्ध से शुद्धतर हो जाता है। अन्त में जब वह चरमावस्था पर पहुँचता है तब वही भक्ति मनुष्य को और सब कुछ भुला-कर केवल ईश्वर रूपी प्रियतम के भाव में ही निमग्न करता है। यह है साध्य भक्ति की बात।

साध्य अवस्था और साधन अवस्था एक नहीं हैं। विचार करना, विचार करते-करते वस्तु के असारत्त्व को समझ पाना, यही है ज्ञान की साधन अवस्था। और साध्य अवस्था क्या है ? जब वह एक अद्वय तत्त्व को, एक अद्वितीय तत्त्व को जान पाये, समझ पाये कि उसके अलावा और द्वितीय वस्तु नहीं है। समझ जाये कि उसके आनन्द के लिए बाहर की किसी भी वस्तु का प्रयोजन नहीं है। यही है साध्य ज्ञान। परन्तु यह ज्ञान पहले ही नहीं हो जाता। प्रथम है विचार। बार-बार बिचार करना होगा कि जगत मिथ्या है। जैसा कि देखते हैं यह छाया मात्र या मरीचिका की तरह है। ऐसा विचार करते करते चलना पड़ता है। किन्तु विचार करने से ही मनुष्य को सन्तोष नहीं मिलता, विचार की अवस्था कष्टदायी है। इस कष्टदायी अवस्था के बीच से मनुष्य जब एक अद्वय तत्त्व को अपना स्वरूप जानकर आविष्कार कर लेता है तब उसे अपरिसीम आनन्द की अनुभूति होती है। वह उपलब्धि करता है कि वह सत्-चित्-आनन्द स्वरूप है। इस उपलब्धि से आनन्द

प्रकाश के लिए किसी अन्य वस्तु की आवश्यकता नहीं। यही है साध्य ज्ञान। ठीक उसी प्रकार साधन भक्ति और साध्य भक्ति भी भिन्न हैं। यह बात पूर्व साधकों ने विचार के माध्यम से हमें दर्शायी है, अवतारगण आकर अपने जीवन द्वारा उस चरम रहस्य को हमारे सामने उद्घाटित कर देते हैं।

भगवान श्री चैतन्य ने हमें समझाया कि ईश्वर को पाने के लिए कठोर तपस्या, तितिक्षा की प्रयोजनीयता नहीं है, याग यज्ञादि आडम्बरों की भी आवश्यकता नहीं है, अन्तर की आकूति, आकांक्षा लेकर उन्हें चाहने से ही वे मिलते हैं: वे प्रेमस्वरूप हैं, उनको पाने से हृदय पूर्ण हो जाता है। "यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं तत:"[6] —जिनको पाने से उससे अधिक और कोई बृहत् लाभ नहीं है, ऐसा प्रतीत होता है। उनको पाने से अन्य सब कामनाएँ दूर हो जाती हैं। आनन्द का स्वाद पाने से और सब विस्वाद हो जाता है। भागवत में है: 'इतराग विस्मारणम् नृणाम्" वह मनुष्य की अन्य समस्त आसक्तियों को भुला देगा।

साधारण मनुष्यों के जीवन में उस आनन्द का आस्वादन कैसे सम्भव हो उसो का मार्ग दर्शन श्री चैतन्य अपने जीवन द्वार दर्शा गये हैं। उनके जीवन की साधना के अंश को हम अधिक गुरुत्व देकर समझने की चेष्टा नहीं करते, क्योंकि हमारे लिए अवतार होते हैं स्वयंसम्पूर्ण। किन्तु अवतारगणों के जीवन का विश्लेषण करने से हम पाते हैं दो भाव। एक मानव भाव और एक परिपूर्ण ईश्वर-भाव। जहाँ मानव भाव है वहाँ वे अन्तर्निहित भगवता सत्ता का अन्वेषण करते हैं। हम आँखों में पट्टी बाँधकर टटोलते फिरते हैं। और वे अनायास ही स्व-स्वरूप को आविष्कार करके हमारे सामने प्रकट कराते हैं। वे जीवन देकर दर्शाते हैं कि उसी को पाने से सब आकांक्षाएँ पूर्ण हो जायेंगी। ईश्वर उनके लिए परम प्रेमास्पद हैं। हम भौतिक विषयों को प्यार करते हैं, मनुष्यों को प्यार करते हैं। परन्तु उनके प्रेम का आस्वाद एक वार मिलने पर, और सब प्रकार का प्रेम, श्री रामकृष्ण की भाषा में, फीका हो जाता है। वह कहते थे, मिश्री का घोल मिलने पर चिपचिपा गुड़ में मन नहीं लगता।

प्रेमावतार श्री चैतन्य ने भी उसी प्रेमस्वरूप ईश्वर को हमारे निकट सहजलभ्य कर दिया। हम ईश्वर को छू नहीं पाते, समझ नहीं पाते, उसी कारण अवतार स्वयं आकर अपने भीतर से भगवत्-सत्ता को समुज्ज्वल रूप में प्रकाशित करते हैं। उनके द्वारा हम भगवान को समझ पाते हैं। हमें श्री चैतन्य के जीवन से प्रेमस्वरूप ईश्वर का जो आस्वाद मिलता है वह हृदय को पूर्ण कर देता है। इसलिए उन्हें 'प्रेमावतार' कहा जाता है। भगवत् प्रेम जैसे सबके ऊपर समान रूप से वर्षित होता है श्री चैतन्य का प्रेम भी उसी तरह आपामर जनसाधारण के ऊपर वर्षित होता है। पापी-तापी, पण्डित-मूर्ख, ऊँच-नीच —इनके बीच उन्होंने कोई प्रभेद नहीं किया, सबको समान रूप से आकर्षित किया। ईश्वर का भक्त मात्र ही उनके लिए एक ही दर्जे का होता है। श्री रामकृष्ण के कथनानुसार, भक्तों की एक ही जात होती है— वे भक्त हैं यही उनकी जात है। अपने-अपने अपूर्व जीवन-स्पर्श से साधारण मनुष्य को भगवत् भक्त में उन्नीत करना ही उनके प्रेम की विशेषता है।

अवतार के जो मानव रूप को बात कही गयी वह जैसे उनके ईश्वर रूप को आविष्कृत करता है। अवतार अपने जीवन द्वारा दर्शाते हैं: देखो, यह मनुष्य कैसे स्वयं को उस पूर्ण प्रेमस्वरूप में परिणत कर सकता है।

श्री चैतन्य के प्रथम जीवन तथा उनके मानव-बोध के भीतर से प्रतीत होता है—एक प्रतिभावान किशोर जो हृदय में एक सशक्त प्रेरणा लेकर कुछ करना चाहता है। नटखट चंचल, यद्यपि मन में सद्भाव भी है—दोनों भावों का उनमें समावेश है। उनकी उच्च आकांक्षा है, दृढ़ शरीर, मन भी सुदृढ़ और पैनी मेधा। उसके बाद जो भाव उनके भीतर प्रकाश की प्रतीक्षा में था वह भाव विकसित होने लगा। उन्होंने अपने भीतर एक ऐसे रस का स्वाद पाया जिससे पाण्डित्य का अभिमान, बुद्धि का गर्व, मान-यश की आकांक्षा सब तुच्छ हो गया। अध्ययन, अध्यापन में और मन न लगा और तर्क-विचार भी न करने लगे। भगवत् भाव में वे विभोर रहने लगे। ईश्वर के लिए ऐसी प्रबल व्याकुलता मनुष्य ने कभी न देखी होगी। सब देखने लगे कि एक ऐसा मनुष्य उनके पास आया है जो मनुष्य रूप में दिखाई पड़ने पर भी साधारण मनुष्य नहीं है। वे जैसे किसी और जगत से आये हैं, किसी अन्य धातु के बने हैं। वे सबको इस प्रचण्ड वेग से आकर्षित करते हैं कि उनके अन्य सब आकर्षण दूर हो जाते हैं। वह आकर्षण प्रेम का है, जो प्रेम सर्वतोमुखी है—सर्वावगाही है—चारो दिशाओं में वितरित होता है।

श्रीरामकृष्ण कहते थे, मलय वायु के बहने से बाँस आदि दो एक असार वृक्षों को छोड़ कर अन्य सब वृक्ष चन्दन हो जाते हैं। जिनके भीतर कुछ सार वस्तु विद्यमान थी वे महाप्रभु के भाव रस का आस्वादन करके रूपान्तरित होने लगे; स्पर्शमणि लोहे को सोना बनाने लगी। उनका प्रेम भाव शीघ्र चारों दिशाओं में प्रसरित होने लगा।

श्री चैतन्य को केवल भावुक ही नहीं मानना चाहिए, अपने भाव-प्रवाह का उन्होंने कैसे विस्तार किया, यह भी देखना होगा। भाव में निमग्न होकर वे यदि केवल समाधिस्थ ही रहते तो उनका हमारे लिए आविर्भाव होना सार्थक न होता। शायद वे कभी गम्भीर रूप से मग्न होकर बाह्य ज्ञान शून्य हो जाते, फिर जब उनका बाह्य ज्ञान लौट आता तब वे भक्तों के संग भगवत् प्रसंग, ईश्वर का लीला-कीर्त्तन करते। कभी उनकी अर्द्धबाह्य-दशा भी होती। बाह्य, अर्द्ध बाह्यदशा और अन्तर्दशा—तीन अवस्थाओं में वे विचरण करते। जब वे बाह्यदशा में रहते तब वे हमारी बात सोचते। किस प्रकार हमारे इस शुष्क जीवन में प्रेम संचार करें यह सोचते। एक स्थान में ही नहीं, नाना जगहों में परिभ्रमण कर उन्होंने प्रेम वितरित किया। बांगला देश से पाँव-पैदल वे गये सुदूर दाक्षिणात्य, काशी, कोशल, अयोध्या, प्रयाग, वृन्दावन। उनके इन सुदूर प्रान्तों में दौड़ने की क्या प्रयोजनीयता थी? क्योंकि वे आये थे सब के लिए। चारों दिशाओं में उस भाव को उन्होंने विस्तृत किया, प्रसारित किया। जहाँ भी वे गये कितने ही मनुष्यों को उन्होंने देवत्व में उन्नीत किया, कितनों को ही अपूर्व मेधा, शक्ति व प्रेम से सम्पन्न किया।

अवतार पुरुषों का प्रभाव उनके स्थूल देहावसान के साथ-साथ ही समाप्त नहीं हो जाता। कहते हैं:

**'अब भी वही लीला करते हैं गौर राय।**
**कोई-कोई भाग्यवान ही उनका दर्शन पाय॥'**

जो भाग्यवान हैं, जिनका जीवन शुद्ध, दृष्टि स्वच्छ है, वे उनका दर्शन पाते हैं। वही लीला आज भी चल रही है: उनकी लीला में प्रेम ही प्रधान है। प्रेम के माध्यम से उन्होंने सब को ईश्वर की ओर आकर्षित किया एवं सब के भीतर उसी प्रेम को अंकुरित किया। यही उनके जीवन का विशेष अवदान है।

अवतार एक या दो नहीं होते। भागवत में है: 'अवतारा ह्यसंख्येयाः'—ईश्वर के अवतार

असंख्य हैं। जैसे काल का अन्त नहीं होता वैसे ही अवतारों का भी अंत नहीं है। अनन्त काल से असंख्य बार वे अवतीर्ण होते हैं। जब भी मनुष्य को उनकी आवश्यकता होती है, वह तभी आते हैं। अनायास ही पकड़ में आते हैं। मनुष्य के दुःसमय में करुणामय ईश्वर उसे दुर्दशा से उबारे बिना रह नहीं पाते। अतः जब भी जगत में भाव का द्वन्द्व उपस्थित हुआ, जब भी धर्म-जीवन का पतन हुआ, तब ही भगवान ने पृथ्वी में आविर्भूत होकर नये पथ पर धर्म के स्रोत को प्रवाहित किया।

श्रीरामकृष्ण के जीवन के साथ श्री चैतन्य के जीवन का कई रूपों में जो सादृश्य है उसका उल्लेख वचनामृत में एक स्थान पर है। मास्टर महाशय ठाकुर के साथ बात करते-करते कहते हैं कि आपके साथ श्रीचैतन्य का बहुत सादृश्य है। ठाकुर ने साग्रह जानना चाहा, क्या मेल है? उन्होंने एक-एक करके उसका उल्लेख किया। बाह्यदशा, अर्द्धबाह्य दशा अन्तर्दशा की बात उन्होंने बतलायी। और कहा कि वे जैसा सर्वत्र प्रेम वितरित करते थे, आप भी वैसा ही कर रहे हैं।

अवतारों में दो सत्ता होती है - एक भक्त और दूसरी भगवान। श्रीरामकृष्ण ने भी वही कहा। जिन्होंने श्रीचैतन्य को समझने की चेष्टा की उन्होंने भी कहा कि श्री राधा और श्रीकृष्ण के सम्मिलित विग्रह हैं—श्रीचैतन्य।

श्री राधा भक्त हैं, श्री कृष्ण भगवान। श्री चैतन्य स्वयं को कभी राधा और कभी कृष्ण रूप में कल्पना कर दोनों की पारस्परिक प्रेमलीला का आस्वाद अपने में करते थे। जैसे भक्त और भगवान एक ही आधार में अवतीर्ण हों। यह विषय हमारे लिए सहज बोध्य नहीं। हमारी दृष्टि में दोनों व्यक्तित्व एक नहीं हो सकते। वैष्णवों की दृष्टि में श्री राधा हैं श्री कृष्ण की ह्लादिनी शक्ति। हम निगूढ़ वैष्णवीय रसतत्त्वों की गहराई में नहीं जाना चाहते, साधारण दृष्टि से कह रहे हैं कि जिनके द्वारा भगवान का आनन्द उद्बोधित होता है उसे कहते हैं श्री राधा। उनके भीतर ही वे स्वयं पूर्ण हैं। इन्हीं दोनों के समन्वय रूप को हम श्री चैतन्य कह रहे हैं। जब भक्त भाव में होते हैं तब भगवान के विरह में होता है उनका आकुलक्रन्दन, व्याकुलता, आर्त्ति। जो स्वयं भगवान हों उनको क्या ऐसी आर्त्ति, व्याकुलता हो सकती है? यह विचारने का मसला नहीं है, दृष्टान्त देखकर समझना पड़ता है। जो भगवान के लिए इतने व्याकुल हो रहे हैं वही फिर गम्भीर समाधिमग्न होकर दिव्य आनन्द में विभोर हैं। तब भक्त और भगवान का पृथक प्रकाश नहीं है, एक बार वे भगवान का आस्वादन कर रहे हैं और फिर एक साथ मिलकर अभिन्न हो रहे हैं। इस भाव को हम साधारणतया नहीं समझ पाते। एक अद्वय तत्त्व कहने से हमें विभ्रान्ति होती है। जहाँ दो तत्त्वों का जिक्र हो रहा है वहाँ अद्वय तत्त्व कहने से अनेक लोगों के मन में आघात पहुँच सकता है। परन्तु जब वे गीत में कहते हैं, 'दोनों हम एक तनु' दोनों एक देहधारी—'न वे रमण, न हम रमणी' वे अब मेरे कान्त नहीं रहे, मैं उनकी कान्ता न रही, एक हो गयी। यही तो है अद्वैत भाव। ज्ञानी लीला को मिथ्या कहते हैं, भक्त वैसा नहीं कहते। श्री चैतन्य जब इस भक्त-भाव को लेकर लीला बिलास करते हैं तब उसको मिथ्या नहीं मानते! वह एक ही आनन्द का आस्वादन कर रहे हैं। श्रीरामकृष्ण का जीवन-तत्त्व विश्लेषण करने से यही विषय अति सुन्दर सुस्पष्ट होकर हमारे समक्ष प्रकट होता है। ✻

---

१. गीता, ४/३, २. कठोपनिषद् १/१/१२, ३. भागवत ९/१९/१४, ४ भागवत ११/२०/७
५. भागवत ११/२०/८, ६. गीता ६/२२, ७. भागवत १०/३१/१४।

[उद्बोधन, फरवरी १९८८ से अनुदित। अनुवादक—डा. कल्याण शंकर भट्टाचार्य।]
१६ मार्च १९८६ को अगरतला में प्रदत्त भाषण का हिन्दी रूपान्तर।

# श्रीरामकृष्ण और हम

**स्वामी ब्रह्मेशानन्द**
रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, वाराणसी

जब हम श्रीरामकृष्ण की जीवनी पढ़ते हैं तो उनके अभूतपूर्व चरित्र एवं आध्यात्मिक ऐश्वर्य को देख कर स्तम्भित हो जाते हैं। कैसी कठोर साधनाएँ की उन्होंने ! उनका छः वर्षों तक न सोना; सभी धर्मों की विभिन्न साधनाओं का एक के बाद एक अनुष्ठान करना तथा तीन दिनों में ही उनमें सिद्धि लाभ करने, जिनमें से प्रत्येक में सिद्धि के लिए सामान्य साधक को अनेक वर्ष ही नहीं, अनेक जन्म लग जाते हैं; असंख्य दिव्य दर्शन, सदा महान आध्यात्मिक भावराज्य में विचरण करना : अश्रुतपूर्व त्याग एवं सत्य निष्ठा आदि का वर्णन पढ़ कर हमारी आँखें आश्चर्य से खुली की खुली रह जाती हैं। और हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं, कि निश्चय ही श्रीरामकृष्ण एक अवतारी महापुरुष हैं, तथा हमारी श्रद्धा-भक्ति एवं उपासना के योग्य देवता हैं।

लेकिन क्या श्रीरामकृष्ण के जीवन की केवल इतनी ही सार्थकता है कि हम उनके चरणों में अपने श्रद्धा सुमन अर्पण करते रहें ? उनके उपदेशों की हम साधारण मानवों के लिए कोई उपयोगिता है या नहीं ? उनकी अभूतपूर्व साधना से आखिर हम क्या सीख सकते हैं ? क्या उनका स्थान एक देवालय में है ? हमारे दैनन्दिन जीवन में उनकी तथा उनके उपदेशों की क्या कोई उपादेयता नहीं है ? आइए, इन समीचीन प्रश्नों का उत्तर खोजने का हम प्रयत्न करें।

**श्रीरामकृष्ण : आध्यात्मिक सत्यों के प्रमाण स्वरूप**

श्रीरामकृष्ण की साधनाओं और सिद्धियों का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य आध्यात्मिक आदर्श एवं उसकी प्राप्ति के उपायों की सत्यता प्रमाणित करना था। उन्होंने अपने जीवन एवं अनुभूतियों से यह निर्विवाद रूप से सिद्ध कर दिया कि ईश्वर नामक एक अतीन्द्रिय चरम सत्ता है तथा उसे विभिन्न प्रयासों द्वारा साक्षात् रूप से जाना जा सकता है। नाना धर्मों की साधना पद्धति का अवलम्बन लेकर चरम लक्ष्य तक पहुँचकर उन्होंने उन सभी धर्मों की सत्यता को भी प्रमाणित कर दिया। वेद, पुराण, सन्तों की जीवनियों तथा नाना धर्मशास्त्रों में वर्णित बातें कपोल कल्पित नहीं हैं। उनमें सत्य है, एवं वे प्रयोग द्वारा सिद्ध की जा सकती हैं यह बात श्रीरामकृष्ण की साधनाओं एवं अनुभूतियों द्वारा सिद्ध होती है।

श्रीरामकृष्ण ने कभी यह अपेक्षा नहीं की थी कि उनके भक्त उनकी तरह की अमानवीय साधना कर सकेंगे। उनका कथन था कि अगर वे उसका आंशिक अनुष्ठान ही करें तो सफल हो सकते हैं। "मैंने एक रुपया किया है, तुम लोग एक आना करो।" वर्त्तमान मुद्रा-प्रचलन की भाषा में हम कह सकते हैं कि श्रीरामकृष्ण ने एक रुपया किया है, यदि हम एक पैसा ही करें तो भी पर्याप्त होगा। तात्पर्य यह कि श्री रामकृष्ण की साधना का सोलहवां क्यों, सौवां भाग भी यदि कोई करे, तो वह आध्यात्मिक सिद्धि प्राप्त कर सकता है।

**श्री रामकृष्ण के उपदेश सभी के लिए :**

लेकिन क्या श्रीरामकृष्ण के जीवन व उपदेशों की उपादेयता केवल साधकों के लिए ही है,

सामान्य सांसारिक नागरिक के लिए नहीं ? हम दुर्बल मानव जो साधना में पूरा मन नहीं लगा सकते, जिनमें न तो ऐसा संकल्प है, और न ही ऐसा अवसर,- क्या हमारे लिए श्रीरामकृष्ण का कोई सन्देश नहीं है ? वस्तुतः श्रीरामकृष्ण का सन्देश, उनका जीवन एवं वाणी संसार के सभी प्राणियों के लिए है। वे अनन्त भावमय महापुरुष थे। साधना की परिसमाप्ति पर माँ जगदम्बा द्वारा उन्हें "भावमुख" में रहने का आदेश हुआ था। "भावमुख" का अर्थ होता है, वह अवस्था जहाँ से सभी भावों का उद्भव होता है। दूसरे शब्दों में समग्र मानवों का समष्टि मन, अर्थात् विराट मन ही "भावमुख" की स्थिति है। तात्पर्य यह कि श्रीरामकृष्ण सदा ही ऐसी स्थिति में रहते थे, जहाँ से वे समग्र प्राणियों के मनोभावों को अपने मनोभाव के रूप में जान सकते थे। वे सभी प्राणियों के अन्तः करण अन्तर्मन के साथ एक होकर विचरण करते थे। इसके परिणाम स्वरूप वे प्रत्येक व्यक्ति की आवश्यकता-विशेष के अनुसार उपदेश निर्देश एवं परामर्श देने में समर्थ थे। वे जान पाते थे कि अमुक व्यक्ति ठीक किस स्थान अथवा स्तर पर खड़ा है, तथा आध्यात्मिक विकास के लिए उसे किस उपाय विशेष की आवश्यकता है। यही कारण है कि उनके उपाय प्रत्येक व्यक्ति के लिए अलग-अलग होते थे। जो व्यक्ति जहाँ होता, श्रीरामकृष्ण उसे वहीं से उठाते थे तथा विभिन्न साधकों को भिन्न-भिन्न उपदेश देते थे। एक भक्त महिला को ध्यान में कठिनाई होती थी। श्रीकृष्ण का ध्यान करते समय उसे अपने प्रिय भानजे का चिन्तन होने लगता था। इसके समाधान स्वरूप श्रीरामकृष्ण ने उसे कहा कि अपने भानजे को खिलाते, नहलाते, सेवा करते हुए यह सोचे कि वह श्रीकृष्ण की ही सेवा कर रही है। इस उपाय से उस महिला ने शीघ्र ही आध्यात्मिक प्रगति कर ली। निरक्षर किन्तु भाव-प्रवण लाटू को श्रीरामकृष्ण ने ईश्वर का नाम गुण-गान, तथा कीर्त्तन करने का उपदेश दिया, किन्तु तीक्ष्ण बुद्धि नरेन्द्र को विचार एवं ध्यान-पथ पर अग्रसर कराया। इस तरह के अनेक दृष्टान्त पाये जा सकते हैं।

**श्रीरामकृष्ण के व्यावहारिक उपदेश :**

श्रीरामकृष्ण द्वारा समय-समय पर अनेक व्यावहारिक-जीवन सम्बन्धी उपदेश भी दिये गये हैं। जिस प्रकार अवतार में ईश्वरत्व के साथ मानवत्व का संयोग आवश्यक है, उसी तरह उनके उपदेशों में भी धर्म तथा व्यावहारिक जीवन का संयोग आवश्यक है। अगर श्रीरामकृष्ण के आध्यात्मिक उपदेशों का पालन वैदान्तिक जीवन के साथ न कर संसार-त्याग करने पर ही किया जा सके तो उनकी उपादेयता केवल इने गिने, स्वर्ग त्यागी एकान्तवासी संन्यासियों के लिए ही रह जायेगी, सर्वसाधारण के लिए नहीं। यही कारण है कि श्रीरामकृष्ण ने ईश्वर-साक्षात्कार के उपायों के आध्यात्मिक निर्देशों के साथ ही साथ संसार में जीने की कला भी सिखायी है। "श्रीरामकृष्ण वचनामृत" संसार में रहते हुए धर्म पालन करने के उपायों से ओतप्रोत है।

श्रीरामकृष्ण के इन उपदेशों को दो श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है :—

(i) धर्म तथा अलौकिक जीवन का समन्वय

(ii) विशुद्ध व्यावहारिक उपदेश

**धर्म तथा जीवन :**

श्रीरामकृष्ण विभिन्न दृष्टान्तों से संसार में जीने की कला तथा संसार में रहते हुए परमार्थ साधन के उपाय बताते हैं। उनकी एक प्रसिद्ध उक्ति है कि एक हाथ से भगवान को पकड़े रहो और दूसरे हाथ से संसार के कर्म करो। जब

कर्म समाप्त हो जाय तब दोनों हाथों से भगवान को पकड़ लो। बड़े घर की दासी की तरह संसार में रहो। दासी बोलचाल में मालिक के पुत्र को अपना पुत्र, मालिक के मकान को हमारा मकान कहती है लेकिन वह अच्छी तरह जानती है कि उसका असली पुत्र तो उसकी छोटी सी झोपड़ी में है। इसी तरह संसार में पुत्र, धन, मकान, आदि सभी को "अपना" कहते हुए भी सदा यह स्मरण रखो कि एकमात्र प्रभु ही अपने हैं, और कोई नहीं। जिस प्रकार कछुआ सारे तालाब में रहता है, लेकिन उसका मन सदा किनारे पर पड़े अंडों में लगा रहता है उसी प्रकार सदा परमात्मा में मन रख कर कार्य करो। इस तरह विभिन्न उदाहरणों के माध्यम से श्री रामकृष्ण संसार और भगवान में तालमेल बिठाने के उपाय बताते हैं। इसके साथ ही वे यह भी कहते थे कि पहले कुछ दिनों तक निर्जन में साधना कर लेनी चाहिए, उसके बाद संसार में रहना चाहिए, क्योंकि ऐसा न करने पर संसार में अलिप्त हो कर रहना बड़ा कठिन है। बीच बीच में साधु संग भी करते रहना चाहिए।

**व्यावहारिक उपदेश :**

श्रीरामकृष्ण कहा करते थे कि साधु होने का अर्थ यह नहीं कि हम मूर्ख होवें, या लोग हमें बुद्धू बनावें। संसार में सज्जन, दुष्ट, सरल, धूर्त, सभी प्रकार के लोग रहते हैं। हमें सावधानी से अपनी रक्षा करते हुए जीवन यापन करना चाहिए। किसी को हानि न पहुँचाते हुए कभी कभी दूसरों को भय दिखाना पड़ता है, जिससे वे हमारी क्षति न करें। छोटी छोटी कथाओं के माध्यम से वे इस बात को भक्तों के मन में बैठाने का प्रयत्न करते थे। नारायण तो सभी में हैं, लेकिन हम शेर रूपी नारायण या खल रूपी नारायण का आलिंगन नहीं करते, उसे दूर से ही प्रणाम करते हैं। इन सभी उपदेशों का उद्देश्य एक ही है—हम निर्विघ्न, या कम से कम विघ्नों के साथ साधना कर सकें।

यहाँ हम श्रीरामकृष्ण के कतिपय विशुद्ध व्यावहारिक उपदेशों का उल्लेख केवल यह दिखाने के लिए करेंगे कि श्रीरामकृष्ण सांसारिक दृष्टि से भी कितने बुद्धिमान, नीतिज्ञ थे। वे कहते थे कि सदा सभी को प्रसन्न रखने का प्रयत्न करना चाहिए, तथा व्यर्थ में किसी का दिल नहीं दुखाना चाहिए। अन्धे को अन्धा नहीं कहना चाहिए। अगर यह जानना ही हो कि उसकी आँख को क्षति कैसे पहुँची तो सीधे न पूछ कर घुमाफिरा कर बात करनी चाहिए जिससे उसे कष्ट न हो। जिस व्यक्ति की जिस विषय में रुचि हो, उस विषय की बात या प्रशंसा करने से वह खुश होता है। अगर कोई कबूतरों में रुचि रखता हो तो कबूतरों की बात करो। श्रीरामकृष्ण के किसी युवक भक्त के पिता के आने पर वे उस युवक की अर्थात पुत्र की, पिता से प्रशंसा करते थे, तथा यह भी कहते जाते थे कि श्रेष्ठ पिता के बिना ऐसा गुणी पुत्र नहीं हो सकता, इत्यादि। जो व्यक्ति बाहर दिखावा करे उससे सावधान रहना चाहिए, इसे समझाने के लिए श्रीरामकृष्ण प्रचलित कहावत का उल्लेख करते और कहते कि लंबे घूँघट वाली स्त्री, कान में तुलसी खोंसने वाला व्यक्ति, चुपचाप रहने वाला या अधिक बोलने वाला व्यक्ति और जिस सतह पर काई छायी हो ऐसा—जल इनसे दूर रहना चाहिए, क्योंकि इन लोगों के अन्दर की खबर नहीं मिल पाती।

दुष्ट व्यक्तियों से संसारी लोगों को अपनी रक्षा करनी चाहिए, तथा बिना झगड़ा मोल लिए उनसे दूर रहना चाहिए। श्री रामकृष्ण कहते थे कि साँड को शान्त करने के लिए मुँह से आवाज निकालनी पड़ती है। शराबी यदि नशे में हो तो उसकी हाँ में हाँ मिलानी चाहिए, और प्रशंसा करनी चाहिए। दुष्ट व्यक्ति या गरम मिजाजी व्यक्ति को देखकर श्रीरामकृष्ण दूर से नमस्कार

करते थे, तथा इस बात का विशेष ध्यान रखते थे कि कहीं वह रुष्ट न हो जाये

जिस प्रकार वे दुष्ट लोगों से बचने के उपाय बताते थे, उसी तरह वे संसार में न फंसने की भी सलाह देते थे। वे अपने भक्तों को यह सलाह देते थे कि कर्म को अधिक न बढ़ावें। प्रभु से प्रार्थना करें कि वे उनके कर्म कम कर दें। पैसा कमाना बुरा नहीं है, लेकिन उतना ही जितना गृहस्थी के सुचारु संचालन के लिए पर्याप्त हो तथा जिससे अतिथि अभ्यागतों की भी सेवा हो सके।

और फिर माँ सारदा को दिया गया उनका व्यावहारिक निर्देश तो प्रसिद्ध है ही, जिसमें वे देश, काल व पात्र के अनुसार अपने व्यवहार को परिवर्तित करने को कहते हैं। "जखन जेमोन, तखन तेमोन, जार जेमोन, तार तेमोन; जेखाने जेमोन, सेखाने तेमोन।" अर्थात्, जब जैसा अवसर हो वैसा, जो जैसा हो, उसके साथ वैसा, और जहाँ जैसी परिस्थिति हो, उसके अनुसार व्यवहार करना चाहिए।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जायेगा कि श्रीरामकृष्ण ने कभी भी धार्मिक जीवन को सामान्य लौकिक जीवन से अलग नहीं किया। उनके उपदेश अत्यन्त व्यावहारिक हैं, जिनका क्रियान्वयन दैनन्दिन जीवन में किया जा सकता है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी रुचि, परिस्थिति एवं सामर्थ्य के अनुसार उनसे कुछ न कुछ सीख सकता है। वे स्वयं कहा करते थे कि मैं जो कुछ कह रहा हूँ, उसका सिर और पैर छोड़ कर ग्रहण करना अर्थात् मैंने तो बहुत प्रकार के उपदेश, बहुत तरह के लोगों के लिए दिये हैं, तुम अपने लिए जो उपयुक्त हो उसे ही ग्रहण करना, अन्य बातों को छोड़ देना।

साक्षात्कार

# स्वामी विवेकानन्दजी का युगकार्य

—काका कालेकर से वार्त्तालाप

अनुवादक—शिवशंकर मिश्र 'हिन्दीवाला'

[१९६९ के १२ से १७ अप्रैल तक पंद्रह दिन स्व० काकासाहब कालेलकर ने अपने गोआ के तरुण मित्र श्री रवीन्द्र केलेकर से विभिन्न विषयों पर अंतरंग बातचीत की थी। उसे केलेकर जी ने अपनी डायरी में लिपिबद्ध कर मई, १९७० में प्रकाशित की। वार्ता के नौवें दिन रविवार दिनांक २०-४-१९६९ को युगावतार श्रीरामकृष्ण और स्वामी विवेकानन्द जी की चर्चा आयी। वही "ज्ञाननिधि के सान्निध्य में" नामक मराठी पुस्तक के ७१ वे परिच्छेद के मुक्त अनुवाद के रूप में यहाँ प्रस्तुत है।]

(धर्म पर सामाजिक दृष्टिकोण से चिन्तन का प्रसंग चल रहा था।)

मैंने पूछा, "क्या रामकृष्ण परमहंस देव का कोई-कार्य नहीं है?"

काकासाहब बोले, "रामकृष्ण परमहंस देव के बारे में हमने स्वामी विवेकानन्द जी के माध्यम से

जाना है। वह स्वामीजी ने अत्यंत विनम्रता से बताया है, इसी में उनका बड़प्पन है। रामकृष्ण से जो सिद्धांतसूत्र मिले थे उन्हें स्वामी विवेकानन्द ने विशद् दर्शन का आयाम देकर बताया "

मैंने पूछा, "स्वामी विवेकानन्दजी का सामर्थ्य किस बात में प्रकट हुआ है ?"

"इस देश की माटी से समरस होने में" काकासाहब ने उत्तर में कहा, "वे और गाँधीजी ये दोनों ही इस देश से पूर्णतः समरस हो चुके थे।.. इतनी सी आयु में विवेकानन्द जी ने कितना बड़ा कार्य किया है ! जितना मैं उनके विषय में सोचता हूँ उतना ही उनके प्रति मेरा आदर बढ़ता ही जाता है फिर यह सब उन्होंने हिन्दू धर्म में रहते हुए ही किया. उसे एक नयी दिशा उन्होंने दी .. अलग पंथ नहीं बनाया।"

काका साहब बोले, "जिस कालखंड में उन्होंने सारे जगत् पर और विशेषरूप से इस देश पर अपना प्रभाव छोड़ा है, उसी कालखंड का मैं भी एक युवक रहा हूँ। विवेकानन्द जी के पहले यह देश (यहाँ के निवासी) किस तरह सोचता था और बाद में कैसे विचार करने लगा यह परिवर्तन मैंने अनुभव किया है ।"

और एकाएक अंतर्मुख होकर वे कहने लगे, "अंग्रेजों को इस देश से निकाल बाहर करने का पहला प्रयास हमने १८५७ में किया था। पर उस समय न तो हम ठीक तरह से संगठित हो पाये और न ही हमारा निश्चय इतना दृढ़ हो सका। निश्चय ही हमारा वह प्रयास छोटा-मोटा विद्रोह (मामूली बगावत) कहकर उड़ा दिया जाय—ऐसा साधारण नहीं था, यह सच है, किंतु उसे सही अर्थों में 'स्वातंत्र्य समर' कहा जा सके इतनी तैयारी भी हम उसके लिए नहीं कर सके थे। इसीलिए हम हार गये। वास्तव में वह हमारी नैतिक पराजय थी। अंग्रेजों ने हमारी इस कमजोरी का पूरा फायदा उठाया और अपने साम्राज्य की नींव मजबूत की। उसके बाद इस देश के अनेक सभ्रांत (प्रतिष्ठित) लोगों ने अंग्रेजी राज का बड़ी प्रसन्नता से स्वागत किया। उस पराये राज के प्रशस्तिगीत भी गाये जाने लगे। एक मराठी कवि ने यहाँ तक गाया है कि, "इस सारे धरातल पर अंग्रेजों जैसा दूसरा स्वामी शायद ही मिले" .. हम किस स्तर तक नीचे गिर गये थे इसका एक और उदाहरण मैं देता हूँ। महाराष्ट्र में जब पेशवाओं के शासन का अस्त हुआ और अंग्रेजी राज मजबूत हो गया तब पेशवाओं के पतन और अंग्रेजों की विजय का आनंद मनाते हुए नये अंग्रेज शासकों द्वारा बड़ी-बड़ी दक्षिणाएँ बाँटी गयीं उन्हें प्राप्त करने हेतु न जाने कितने वेदशास्त्रसंपन्न शास्त्री पंडित दौड़ पड़े थे। हमारा हृदय इतना पराभूत हो गया था। ऐसे इस अपने आत्मगौरव गँवा चुके राष्ट्र के सामने विवेकानन्दजी ने आत्म-विश्वास, स्वाभिमान, निर्भयता, त्याग, वैराग्य, निःस्वार्थ सेवा आदि आदर्श रखे और उसकी ग्लानि दूर की कितना बड़ा कार्य उन्होंने किया ! इसीलिए मैंने कहा कि, मैं जब उनके बारे में सोचता हूँ तब मेरा हृदय भक्तिभाव से गद्गद् हो जाता है ।"

मैंने कहा, "उनके पूर्व भी वेदान्त का प्रचार इस देश में बड़े बड़े आर्यों ने और सारे साधुसंतों ने भरपूर किया था .. किन्तु विवेकानन्दजी के कार्य का ही बहुत बड़ा असर हुआ। ऐसा क्यों हुआ होगा ?"

काका साहब बोले, "उनके पूर्व धर्मजागृति के जो कार्य हुए, उन सबका सार ईश्वरभक्ति, सदाचार, संतोष एवं भगवन्नाम की महिमा इतने में ही आ जाता है। विवेकानन्द जी ने इन सब बातों के साथ ही तेजस्वी पुरुषार्थ, राजकीय-अस्मिता (पहचान), भौतिक ज्ञानोपासना और

सामाजिक सुधार इन बातों पर भी जोर दिया। धर्मानुभव के आधार पर संस्कृति में नवचैतन्य लाना चाहिए, उद्योग-व्यवसाय बढ़ाकर लोगों की आर्थिक दशा में सुधार किया जाना चाहिए— आदि आग्रहों से युक्त जो सर्वांगीण जागृति इस देश में उदित हुई—स्वामी विवेकानन्द जी उसके अग्रदूत थे।"

मैंने कहा, "उन्हें पाश्चात्य शिष्य मिले यह भी उनके प्रभाव विस्तार का एक कारण हो सकता है।" काका साहब बोले, "हाँ, वह भी एक कारण है। अमेरिका जाने से पहले वे एक अज्ञात संन्यासी के रूप में देशभर में घूमे। अपने इस प्रवास में उन्होंने देश-दशा का गहराई से निरीक्षण-परीक्षण किया और तभी उनके सामने देशोद्धार का मार्ग स्पष्ट हो गया। उन्हें लगा जो राष्ट्र आत्मविश्वास गँवा बैठा है, उसमें प्राण फूँकने हेतु संजीवनी बाहर से लानी पड़ेगी। इसलिए वे अमेरिका गये ·····वहाँ उन्हें शिष्य भी मिले और पैसा भी मिला·····"मैंने कहा, "पैसा तो उतना नहीं मिला, ऐसा रोमा रोलां ने उनकी जीवनी में लिखा है।"

काका साहब बोल, "लेकिन निष्ठावान शिष्य तो मिले। इस बात का भी यहाँ के जन मानस पर विशेष प्रभाव हुआ।·····जहाँ गोरे (अंग्रेज) लोग अपने मालिक और गुरु बनकर रह रहे थे, वहीं उन्हीं में से कुछ लोगों को यहाँ आकर, शिष्य भाव से विनत होकर (स्वामीजी की) सेवा-सुश्रूषा करते देखकर यहाँ के लोगों की हीन ग्रन्थि (inferiority complex) दूर होने लगी ···· यह भी एक बड़ी उपलब्धि ही थी ऐसा कहना चाहिए ····।"

"देश के स्वातंत्र्य-संपादन हेतु उन्होंने जिसका विशेष उल्लेख किया जा सके, ऐसा कुछ किया था क्या ?" मैंने पूछा।

"वैसा देखा जाय तो प्रत्यक्ष कुछ नहीं किया," काका साहब बोले, "किन्तु परोक्ष रूप से बहुत कुछ किया है .... तिलकजी ने उन्हें राष्ट्रभक्त संत (Patriotic saint) ही कहा था न ?....."

और फिर वे बोले, "अन्य बातों को एक ओर रख दें किन्तु रवीन्द्रनाथ, अरविन्द और गाँधी ये जो तीन युगपुरुष हमें मिले उनके निर्माण में विवेकानन्द जी का बहुत बड़ा हाथ था - ऐसा मेरा मत है. तीनों का ही साहित्य और कार्यप्रवाह जब मैं देखता हूँ तब, इन तीनों के ही युगकार्य में मुझे विवेकानन्दजी का हाथ स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है "

और वे मुझे पूछने लगे, "क्या तुमने भगिनी निवेदिता की The Master as I Saw Him यह पुस्तक पढी है ?"

मैंने कहा, "मेरी पढ़ी हुई अत्यंत उत्कृष्ट पुस्तकों में से वह एक है।..."

काका साहब बोले, "विवेकानन्द जी को समझने के लिए जैसे उनके निजी पत्र पढ़ने चाहिए वैसे ही निवेदिता की यह पुस्तक भी पढ़नी चाहिए। इस पुस्तक में हमें विवेकानन्द जी के जीवन का जो पहलू (आयाम) देखने को मिलता है उसकी कल्पना हम उनकी जीवनी पढ़ने मात्र से नहीं कर सकते।····उनकी (निवेदिता की) The web of India Life" इस पुस्तक जैसी दूसरी पुस्तक तो विश्व-साहित्य में ढूंढने से भी शायद ही मिले।..... निवेदिता की ऐतिहासिक. सामाजिक, शैक्षिक और सांस्कृतिक सेवा से विवेकानन्द जी का कार्य राष्ट्रीय स्वरूप (पकड़) पा सका है। शिक्षा के द्वारा जीवन परिवर्तन और संस्कृति संवर्धन करना इस विवेकानन्दजी के महत्प्रयास का विस्तार उन्होंने (निवेदिता ने) भली भाँति किया है।..'

# हिन्दू समाज पर संकट के कारण

— स्वामी आत्मानन्द

[रामकृष्ण मिशन के वरिष्ठ संन्यासी ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्द जी का रायपुर (म० प्र०) स्थित रामकृष्ण मिशन के अध्यक्ष के नाते परिचय देना बहुत कम होगा। हिन्दू धर्म और संस्कृति पर इनके ओजस्वी और मंत्रमुग्ध करने वाले व्याख्यानों से पूरा देश परिचित है। पिछले दिनों दिल्ली में उनके साथ विभिन्न सामयिक विषयों पर 'पाञ्चजन्य' ने चर्चा की। इसमें बहुत स्पष्टता से स्वामी आत्मानन्द ने अपने विचार प्रकट किए। प्रस्तुत है मुख्य अंश जिसे नव भास्कर, रायपुर से लिया गया है।]

**देश की वर्त्तमान परिस्थिति में भी क्या संन्यासी को केवल आध्यात्मिक प्रचार तक ही सीमित रहने चाहिए या लोकहित में इस परिस्थिति को बदलने के प्रति भी उनका कोई दायित्व है?**

संन्यासी भी राष्ट्रीय, सामाजिक और राजनीतिक परिस्थिति पर चिन्तन करते हैं पर उनका देखने का नजरिया राजनीतिक नहीं, आध्यात्मिक होता है। मेरी राय में वर्त्तमान संकट या बीमारियाँ मूलत: चारित्रिक पतन से ही जन्मी हैं। यदि चरित्र गठन हो जाए तो समाधान मिल सकता है। आज सर्वत्र मनुष्य का स्वार्थ ही सर्वोपरि दिखता है। ऐसी स्थिति में राजनीति भी विकृत हो जाती है इसीलिए स्वामी विवेकानन्द ने कहा था 'जो संन्यासी बनेंगे, वे तो समाज के क्षेत्र में ही रहकर काम करेंगे। शिक्षा का प्रसार करेंगे।' वे मानते थे कि कुरीतियों को शिक्षा के माध्यम से ही दूर किया जा सकता है। शिक्षा प्राप्त करके ही लोग जागृत होंगे और अपने अधिकार के साथ-साथ कर्त्तव्य को भी पहचानेंगे। शिक्षा के माध्यम से ही वे राष्ट्र के कल्याण में अपने योगदान का बोध कर सकेंगे। इसीलिए स्वामी विवेकानन्द हम को आदेश दे गये कि गाँवों में, वनवासी क्षेत्रों में जहाँ-जहाँ पिछड़े हुए वर्ग हैं उनके लिए हम काम करें। अत: संन्यासी के लिए हम यही कर्त्तव्य मानते हैं कि वह किसी भी रूप से समाज के हितकर कार्यों में लगा रहे और लोगों में चेतना फैलाए।

**स्वामी विवेकानन्द ने दशाब्दियों पूर्व आह्वान किया था कि यदि उन्हें सौ समर्थ, आदर्श प्रेरित युवा मिल जाएं तो वे देश को बदल देंगे। उस समय की परिस्थिति मे और आज की हालत में क्या सकारात्मक परिवर्त्तन हुआ है? क्या अभी तक स्वामी विवेकानन्द द्वारा वांछित सौ युवक भी नहीं मिले हैं।**

तब की परिस्थिति की यदि आज से तुलना करें तो अधिकांशत: नकारात्मक परिवर्तन ही हुए हैं, सकारात्मक नहीं। स्वामी जी ने जिन समस्याओं को तब देखा था और जिनके लिए उन्होंने अपनी देह अर्पित कर दी, रक्त दे दिया, वे समस्याएं अभी भी हल नहीं हुई हैं। जैसे छूआछूत की समस्या को ही लें। स्वामी जी ने उस समय भी कहा था कि तुम लोग एक बहुत बड़े वर्ग को छूआछूत के व्यवहार से अपने से अलग कर रहे हो। यह हिन्दू समाज के लिए बहुत बड़ा खतरा है। उन्होंने यह भी कहा था कि अगर अस्पृश्य

कहा जाने वाला व्यक्ति हमारे घर में आए तो उसे हम दूर-दूर करते हैं, पर अगर वही व्यक्ति ईसाई हो जाए, अपना नाम जॉन रख ले तो भले ही वह फटी-पुरानी पैंट-कमीज पहने हुए हो, हम उठकर खड़े होते हैं, नमस्कार करते हैं और उसे बैठने को कुर्सी देते हैं। इस मनोवृत्ति का दायित्व किस पर है? दायित्व हमारे हिन्दू समाज पर ही है। फिर भी वह चेता नहीं है। स्वामीजी ने यह बात सौ साल पहले कही थी और यह भी कहा था कि इस प्रवृत्ति के कारण जो संकट हिन्दू समाज पर आ रहा है उसे हम स्वयं बुला रहे हैं। बाहर से ईसाई मिशनरी आकर उन्हें धन देते हैं, धर्मान्तरण करते हैं, तो यह तो बहुत गौण समस्या है। यदि हिन्दू समाज अपने पैरों पर खड़ा हो, अपनी बुराइयों को स्वयं पहचाने तो किसी की हिम्मत नहीं हो सकती कि ऐसा कर सके। इस सन्दर्भ में मैं मीनाक्षीपुर की घटना का जिक्र करूँगा। ठीक है कि वहाँ पेट्रोडालर भेजे गये, मुसलमानों ने हरिजनों को प्रलोभन दिया और कुछ लोग मुसलमान बने, पर इसके दूसरे-पक्ष को हम बिल्कुल भुला देते हैं कि आखिर वे लोग मुसलमान क्यों बने? चन्द रुपयों के लिए ही? असल में हमने उनका सामाजिक बहिष्कार करके, उनके साथ छुआछूत का व्यवहार करके स्वयं ही उनके मन में प्रतिहिंसा की आग जला दी। मीनाक्षीपुरम् में कुछ रास्ते ऐसे थे, जहाँ से अछूत जूता पहन कर नहीं जा सकते थे। आज यदि बस में सीट खाली है और वहाँ कोई तथाकथित सवर्ण बैठा हुआ है तो आज भी कोई अछूत सवर्ण की बगल की खाली सीट पर नहीं बैठ सकेगा। यदि वह मुसलमान हो तो बैठ सकता है, ईसाई हो तो बैठ सकता है। संरक्षण प्राप्त करने के लिए ही हरिजनों ने धर्मान्तरण किया। उनके बीच समता और विकास के लिए जब रामकृष्ण मिशन ने काम करना शुरू किया तो ऐसे अनेक हिन्दू मिले जिनका कहना था कि क्या फर्क पड़ता है अगर ये अछूत मुसलमान या ईसाई बन जाते हैं, बनने दो। अगर आज भी यह स्थिति है तो सोचिए कि यह समाज कहाँ जाएगा?

आपका दूसरा प्रश्न था कि स्वामी विवेकानन्द ने जैसे सौ युवकों का आह्वान किया था, क्या वे अभी तक नहीं आये हैं? मुझे ऐसा लगता है कि युवक तो मिले हैं पर हमारे पास स्वामी विवेकानन्द जैसा दिशा दर्शक नहीं है जो हमें आदेश दे सके कि आग पर चलो, समुद्र में कूदो, कुएँ में कूदो—ऐसा नेतृत्व हमारे पास नहीं है। यदि ऐसा दिशादर्शक हमारे पास होता तो आज संन्यासियों की जितनी संख्या हमारे पास है, हम उसी से बहुत बड़े काम कर सकते थे।

**पिछली एक शताब्दी से स्वामी विवेकानन्द, स्वामी दयानन्द, डा० हेडगेवार जैसे अनेक महापुरुषों द्वारा बार-बार चेताने, झकझोरने के बावजूद हिन्दू समाज में वांछित सकारात्मक परिवर्तन क्यों नहीं हो पाये?**

कारण यह है कि हमारे भीतर अनेक ऐसी रूढ़ियाँ घर कर गयी हैं, जिनको हटाना बहुत कठिन हो रहा है। ये रूढ़ियाँ जातिभेद, सम्प्रदाय के रूप में हैं। पहले ऐसा लगता था कि शिक्षा के माध्यम से रुढ़ियाँ दूर होंगी। पर आज भी काफी बड़ी मात्रा में शिक्षितों में रूढ़ियाँ व्याप्त हैं। बोलने, लिखने का मौका आएगा तो वह रूढ़ियों के खिलाफ मत व्यक्त करेगा। परन्तु व्यवहार में ठीक विपरीत आचरण करेगा। हम सुधार के लिए नारेबाजी तो कर सकते हैं, पर जब स्वयं से सुधार शुरू करने की बात हो तो पीछे हट जाते हैं। आम हिन्दू की मानसिकता ऐसी है कि 'शिवाजी पड़ोस में जन्में तो अच्छा, पर अपने घर का लड़का तो परम्परागत ही हो।'

दूसरी बात यह भी है कि हमने अध्यात्म में

संसार को जो इतना माया-मोह की मरीचिका कहा, वह भी एक प्रकार से हमारी राष्ट्रीय दुर्बलता का कारण है। अगर शरीर क्षण भंगुर है और जगत मिथ्या है तो फिर खाने के लिए क्यों माँगते हो ? मर जाओ। शंकराचार्य ने भी जगत को जब मिथ्या कहा तो उस का अर्थ भिन्न था। यदि वे इसके शाब्दिक अर्थ पर जाते तो जीवन भर इतनी कर्मठता दिखाने की ही क्या आवश्यकता थी ? पूरे देश को एक सूत्र में क्यों बाँधा ? जब बोलना, लिखना, शास्त्र पढ़ना-- सभी कुछ मिथ्या है तो इतना कर्म करने की क्या जरूरत थी ? अर्थात् शंकराचार्य को भी ठीक ढंग से नहीं समझा।

इसके अलावा यह भी सच है कि हमारे पुरोहितों ने धर्म को बहुत विकृत कर दिया। जिस ढंग से उनका अपना स्वार्थ सधता हो, उस ढंग से उन्होंने धर्म की व्याख्या की। तीर्थ क्षेत्र में हमारी बार-बार जाने की इच्छा क्यों नहीं होती ? क्यों वहाँ किसी तरह एक बार जाकर डुबकी लगा कर तुरन्त लौट आने को मन चाहता है ? इसका प्रधान कारण पुरोहितों, पंडों का भ्रष्टाचार ही है। इस प्रकार के अंध-विश्वास समाज को आगे नहीं बढ़ने दे रहे हैं।

**धार्मिक और सामाजिक क्षेत्र में क्रांतिकारी हितकर परिवर्तन करने के लिए स्वामी विवेकान्द ने रामकृष्ण मिशन की स्थापना की थी। क्या आप इसकी कुछ सकारात्मक उपलब्धियां गिना सकते हैं ?**

हमारे मुख्य कार्य दो प्रकार के हैं– एक, रामकृष्ण परमहंस और विवेकानन्द के विचारों का अधिकाधिक प्रचार और दूसरा, समाजसेवा का काम। अब जहाँ भी हम जाते हैं, स्वामी विवेकानन्द और रामकृष्ण परमहंस के विचार पढ़कर उसी दिशा में सोचने वाले भी मिलते हैं। परन्तु हो यह रहा है कि इस प्रकार सोचने वाले एकजूट नहीं हो पाते।

लेकिन एक बात निश्चित है कि हिन्दू समाज का जागरण कभी भी साम्प्रदायिक मुद्दों को उठाने से नहीं हुआ है। केवल जब उसके उदार और व्यापक जीवन मूल्यों का आह्वान किया जाता है, तभी वह जगता है। हिन्दू धर्म में साम्प्रदायिकता आ ही नहीं सकती। स्वामी विवेकानन्द ने कहा था कि विश्व में यदि कोई ऐसा धर्म है जो विश्व धर्म बनने योग्य है तो वह वेदान्त धर्म या हिन्दू धर्म ही है। यही धर्म शाश्वत मूल्यों पर टिका हुआ है। बाकी सभी धर्म तो एक व्यक्ति पर आधारित हैं। कल्पना करिए कि यदि किसी ऐतिहासिक खोज से यह प्रमाणित हो जाता है कि ईसा मसीह नाम से कोई व्यक्ति हुए ही नहीं थे तो धर्म गिर जाता है। इस्लाम के बारे में भी यही है। पर कोई नहीं बता सकता कि हिन्दू धर्म का संस्थापक कौन था ? यही शाश्वतता, इसकी प्राण शक्ति है।

आज जब चारों ओर साम्प्रदायिकता बढ़ रही है, नारे लगाए जा रहे हैं कि सिर्फ उन्हीं का धर्म संसार में रहे, इन सब समस्याओं का हल हिन्दू धर्म ही है। हमने कभी किसी को जबरन अपने धर्म में शामिल नहीं किया, कभी धर्म के नाम पर अत्याचार नहीं किये। हमारी प्रणाली शास्त्रार्थ की रही है, शस्त्रार्थ की नहीं।

**आज देश की परिस्थिति में सर्वाधिक चिन्ताजनक बात आपको क्या दिखाई देती है ?**

आज के पंजाब में जो हो रहा है उसे हम काला धब्बा मानते हैं। यह एक कलंक है। हिन्दू ही हिन्दू को मार रहे हैं। आखिर हिन्दू है कौन ? जो भी विश्व के इस हिस्से में जन्मा है वह हिन्दू है। चाहे वह बौद्ध हो, जैन हो, सिख हो, गाणपत्य हो, शैव हो, वैष्णव हो। हमने एक समान अभिधा हिन्दू से उसे सम्बोधित किया है। इसीलिए हमारे यहाँ कभी साम्प्रदायिकता का जहर नहीं रहा।

**देश में बढ़ रहे अल्पसंख्यकवाद की समस्या का क्या समाधान है ?**

इसका एक ही समाधान है कि अल्पसंख्यक और बहुसंख्यक के भेद को खत्म कर दिया जाए। इसके लिए आवाजें भी उठ रही हैं। एक लोकतंत्र में सभी नागरिकों को समान अधिकार और कर्त्तव्य दे दिये गये तो अल्पसंख्यक बहुसंख्यक दोनों का क्या अर्थ है ? सभी भारतीय हैं, भारतीय रहें। सब पर एक समान कानून लागू हों। किसी के लिए विशिष्ट कानून न बनाये जायँ।

**आप राष्ट्रीय और सामाजिक स्तर पर सक्रिय रहते हैं। राजनीति से परहेज क्यों ? वहां की गंदगी भी तो साफ होनी चाहिए।**

वहाँ की गंदगी तब अपने आप साफ हो जायगी, जब राष्ट्रीय और सामाजिक स्तर पर चरित्रवान व्यक्तियों का निर्माण होगा। संन्यासी भी यदि राजनीति में दिलचस्पी लेने लगे तो व्यक्ति निर्माण कौन करेगा ?

**क्या यह दुर्भाग्यपूर्ण नहीं कि जिस समाज को सुधारने और उसे उत्कर्ष पर ले जाने के लिए संन्यासी निकले और इस उद्देश्य के लिए संस्थाएं गठित कीं, अंततः उन संस्थाओं की रक्षा के लिए ही वे सामाजिक विकृतियों के सामने झुक गये या उनसे कतराने लगे ?**

जैसे ?

**आपके सामने सबसे बड़ा उदाहरण तो यही है कि पं० बंगाल की कम्युनिस्ट सरकार के नियंत्रण से शिक्षा-संस्थान को बचाने के लिए रामकृष्ण मिशन को घोषित करना पड़ा कि वह हिन्दू नहीं है ?**

इसके बारे में कुछ गलतफहमियाँ हैं। पहली बात तो यह है कि हमने किसी भी, शपथपत्र में यह घोषित नहीं किया है कि हम हिन्दू नहीं हैं। इस सन्दर्भ में कलकत्ता उच्च न्यायालय के निर्णय को भी आप पढ़ सकते हैं। दूसरा पक्ष यह है कि पूरे बंगाल में केवल रामकृष्ण मिशन की ही संस्थाएँ हैं जहाँ धर्म का पाठ पढ़ाया जाता है। अन्यथा बंगाल की सभी संस्थाओं का साम्यवादीकरण हो गया है। बच गये ईसाई और मुस्लिम, तो वहाँ की सरकार उनको छू नहीं सकती। परन्तु इस सरकार ने हिन्दू सनातन धर्म का पाठ पढ़ाने वाली हमारी संस्थाओं को कब्जे में लेना चाहा। मामला ऐसे शुरू हुआ। उन्हें बचाने के लिए अगर हमने कानूनी रणनीति के तहत कुछ कहा हो तो इसे जनता क्यों स्वीकार नहीं करती ? आखिर हम हिन्दू धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए ही तो इन संस्थाओं को चला रहे हैं ? क्या किसी ने विचार किया है कि सरकार रामकृष्ण मिशन को ही क्यों नष्ट करना चाहती है ? इसका कारण यह है कि बंगाल में रामकृष्ण मिशन के अलावा बाकी सभी हिन्दू संस्थाएँ इतनी दुर्बल हैं कि उनसे कम्युनिस्टों को कोई खतरा नहीं है। हमारी संस्थाओं में जागरूक, धर्म को समझने वाले विवेकशील, बुद्धिमान लोग हैं। यही कम्युनिस्टों को अपने विस्तार में सबसे बड़ा खतरा दिखता है। ऐसी स्थिति में अगर हमारी संस्थाएँ कम्युनिस्टों के हाथों में चली जाएं तो किसको लाभ होगा ? और अगर मुद्दा सिर्फ कानूनी लड़ाई का है तो हर कानूनी तरीके से क्यों न बचाव किया जाए ? हमने न्यायालय में यह घोषित किया है कि हम रामकृष्ण मिशन संस्था के मानने वाले, हिन्दुओं में ऐसे हिन्दू हैं, जिनके अनेक विचारों का बहुसंख्यक हिन्दू समाज पोषक नहीं है। जैसे हम सभी धर्मों के लोगों को प्रवेश देते हैं पर उनका शुद्धिकरण नहीं करते। हमारे मन्दिरों में सभी धर्मों के लोग बिना रोक-टोक के जा सकते हैं। अगर कोई मुसलमान हमारे यहाँ आकर संन्यास लेता है और उसके बाद उसका नाम समझिए स्वामी गंगानन्द रखा जाता है फिर भी हम उसे नमाज पढ़ने,

कुरान शरीफ पढ़ने की इजाजत देंगे। अतः राम-कृष्ण मिशन हिन्दू होते हुए भी इस के पास ऐसी विशेषताएँ हैं जो बहुसंख्यक हिन्दू समाज में नहीं हैं। इस आधार पर हमको धारा २६ (अ) और ३० के अन्तर्गत वे सुविधाएँ दी जाएँ जो अल्पसंख्यकों के लिए उपलब्ध हैं।

**रामजन्म भूमि के बारे में आपका क्या कहना है ?**

हमारी दृष्टि से यह विवाद का विषय ही नहीं है। हम तो चाहते थे कि १९४७ में ही वहाँ श्रीराम मन्दिर का निर्माण कर देना चाहिए था। इतना विलम्ब किया ही क्यों ?

राम जन्मभूमि, कृष्ण जन्मभूमि, काशी विश्वनाथ मन्दिर इन सभी पुराने स्थानों पर प्राचीन गरिमा के अनुसार मन्दिर बनने ही चाहिए। ये स्थान हिन्दुओं को मिलें, इसमें भला किसे संशय हो सकता है ? बाबरी मस्जिद तो वैसे भी शियाओं की है और वे उसे छोड़ने को भी राजी हैं। ऐसी स्थिति में मुसलमानों को स्वेच्छा से ये स्थान हिन्दुओं को सौंप देने चाहिएं और अगर हिन्दुओं ने उनकी किसी मस्जिद पर कब्जा किया है तो वे उन्हें वापिस कर दें।

□

# देवी द्रौपदी

डॉ० आरती श्रीवास्तव,
जय प्रकाश नगर, छपरा

कुलीन राजवंश की कन्या, पाण्डव जैसे वीर राजाओं की पत्नी, महाराज पाण्डु की पुत्रवधू, वृष्टद्युम्न जैसे पराक्रमी भाई की बहन, अयोनिजा यज्ञप्रसूता द्रौपदी की गणना पुराणों में उन पंच-कन्याओं में की गयी है, जिनके नित्य प्रातः स्मरण से अभीष्ट कामनाओं की प्राप्ति होती है और पुण्यलाभ होता है—

अहल्या द्रौपदी तारा कुन्ती मन्दोदरी तथा।
पञ्चकं ना स्मेरन्नित्यं महापातक नाशनम् ॥

ऐसी क्या विशेषता है इस द्रौपदी में ! भारतीय समाज की रचना के मूल में धर्म, अध्यात्म और कर्त्तव्य की प्रधानता रही है। यहाँ लौकिक आकांक्षा और सुख विलास के लिए कोई स्थान नहीं है। यह त्याग और उत्सर्ग का समाज है। इसकी नींव कर्त्तव्य और धर्म के ऊपर ही स्थापित की गयी है। इसमें वैयक्तिक सुखों और आकांक्षाओं के लिए मर मिटना ही इसकी मर्यादा है। अर्थात् इस समाज में जितने भी प्राणी हैं उनके पद और स्थान का निश्चय उनके मानवीय कर्त्तव्यों और धर्म के आधार पर ही किया गया है। व्यक्ति अपने कर्त्तव्य और धर्म के अनुसार ही नर से नारायण में प्रतिष्ठित होता है। किन्तु, इस कर्त्तव्य और धर्म की मर्यादा को प्रतिष्ठित करने हेतु समय-समय पर ब्रह्म और शक्ति का अभिन्न अवतरण हुआ करता है।

पुरुषार्थ और शक्ति का कुछ ऐसा ही अभिन्न अवतरण महाभारत-काल में दीख पड़ता है जिसके नायक हैं भगवान श्रीकृष्ण और नायिका देवी

द्रौपदी। कृष्ण और कृष्णा का संबंध विश्व-साहित्य में बेमिसाल है। दूसरे शब्दों में श्रीकृष्ण-भक्ति का ही नाम द्रौपदी है। जिसे द्रौपदी मिलती है, भगवान को उसका सारथी होना पड़ता है।

देवी द्रौपदी पाञ्चाल नरेश राजा द्रुपद की अयोनिजा पुत्री थी। याज एवं उपयाज नामक ऋषियों की सहायता से द्रुपद ने 'पुत्रकामेष्टि यज्ञ' का अनुष्ठान किया। उस यज्ञाग्नि से धृष्टद्युम्न तथा द्रौपदी का आविर्भाव हुआ। यज्ञ से उत्पन्न होने के कारण यह अयोनिजा तथा याज्ञसेनी भी कहलाती है। पाञ्चाल-नरेश की पुत्री तथा श्यामाङ्गी होने से 'कृष्णा' नाम से भी जानी जाती है। जन्म के समय आकाशवाणी ने कहा था—देवताओं का कार्य सिद्ध करने के लिए, क्षत्रियों के संहार के उद्देश्य से इस रमणी-रत्न का जन्म हुआ है। इसके कारण कौरवों को बड़ा भय होगा।

अकेले अर्जुन के द्वारा स्वयंवर में जीती जाने पर भी माता कुन्ती की आज्ञा से इन्हें पांचों भाइयों ने व्याहा था। राजा द्रुपद को यह जानकर प्रसन्नता हुई कि ब्राह्मण-वेश में आये पाँचों पाण्डव थे तथा मत्स्य-भेदन करनेवाले और कोई नहीं स्वयं अर्जुन थे, किन्तु वह उन पाँचों की पत्नी बनेगी, यह जानकर उन्हें दुःख हुआ। इसी समय व्यासजी ने प्रकट होकर द्रुपद को पाण्डवों के धर्म, वायु, इन्द्र तथा अश्विनीकुमारों और द्रौपदी के लक्ष्मी के अवतार का रहस्य बताते हुए कहा कि द्रौपदी को भगवान शंकर का वर प्राप्त है कि 'वह पाँच पतियों की पत्नी बनेगी।' पाँच पतियों के वरण की बात सुनकर दौपदी को जरा भी घबराहट नहीं हुई। किन्तु श्रीकृष्ण—प्रिया देवी सत्यभामा को अवश्य घबराहट होने लगी। एक बार वन में भगवान श्रीकृष्ण देवी सत्यभामा के साथ पाण्डवों से मिलने आये। उस समय बातों ही बातों में सत्यभामाजी ने द्रौपदी से पूछा—'बहन! मैं तुमसे एक बात पूछती हूँ। मैं देखती हूँ कि तुम्हारे शूरवीर और बलबान पति सदा तुम्हारे अधीन रहते हैं; इसका क्या कारण है? क्या तुम कोई जंतर-मंतर जानती हो? अथवा क्या तुमने जप, तप, व्रत, होम या विद्या से उन्हें वश में कर रखा है? मुझे भी कोई ऐसा उपाय बताओ जिससे भगवान श्यामसुन्दर मेरे वश में हो जायँ।' देवी द्रौपदी ने कहा—बहिन! आप श्यामसुन्दर की पटरानी एवं प्रियतमा होकर कैसी बातें करती हैं? सती-साध्वी स्त्रियाँ जंतर-मंतर से उतनी ही दूर रहती हैं जितनी साँप-बिच्छू से। क्या पति को जंतर-मंतर आदि से वश में किया जा सकता है? भोलीभाली अथवा दुराचारिणी स्त्रियाँ ही पति को वश में करने के लिए इस प्रकार के प्रयोग किया करती हैं। ऐसा करके वे अपना तथा अपने पति का अहित ही करती हैं। ऐसी स्त्रियों से सदा दूर ही रहना चाहिए।

इसके बाद उन्होंने बतलाया कि अपने पतियों को प्रसन्न रखने के लिए वे किस प्रकार आचरण करती थीं। उन्होंने कहा—"बहिन! मैं अहंकार और काम-क्रोध का परित्याग कर बड़ी सावधानी से सब पाण्डवों की और उनकी स्त्रियों की सेवा करती हूँ। मैं ईर्ष्या से दूर रहती हूँ ओर मन को काबू में रखकर केवल सेवा की इच्छा से अपने पतियों का मन रखती हूँ। मैं कटु भाषण से दूर रहती हूँ, असभ्यता से खड़ी नहीं होती, खोटी बातों पर ध्यान नहीं रखती, बुरी जगह पर नहीं बैठती, दूषित आचरण के पास नहीं फटकती तथा पतियों के अभिप्रायपूर्ण संकेत का अनुसरण करती हूँ। देवता, मनुष्य, गन्धर्व, युवा, धनी अथवा रूपवान-कैसा ही पुरुष क्यों न हो, मेरा मन पाण्डवों के सिवा और कहीं नहीं जाता। अपने पतियों के भोजन किये बिना मैं भोजन नहीं करती, स्नान किये बिना स्नान नहीं करती और बैठे बिना नहीं बैठती। जब-जब मेरे पति घर आते हैं, तब-तब

मैं खड़ी होकर उन्हें आसन और जल देती हूँ। मधुर रसोई तैयार करती हूँ, समय पर भोजन कराती हूँ, सदा सजग रहती हूँ, घर में अनाज की रक्षा करती हूँ और घर को झाड़-बुहारकर साफ रखती हूँ। मैं बातचीत में किसी का तिरस्कार नहीं करती, कुलटा स्त्रियों के पास नहीं फटकती और सदा ही पतियों के अनुकूल रहकर आलस्य से दूर रहती हूँ। सासजी ने मुझे कुटुम्ब संबंधी जो-जो धर्म बताये हैं, उन सबका मैं पालन करती हूँ। सत्यभाषण, पतिसेवा, भिक्षा देना, पूजन, श्राद्ध, त्योहारों पर पकवान बनाना, माननीयों का आदर करना तथा और भी मेरे लिए जो धर्म विहित हैं, उन सभी का मैं सावधानी से रात-दिन आचरण करती हूँ, मैं विनय और नियमों को सर्वदा सब प्रकार अपनाये रखती हूँ। मेरे विचार से तो स्त्रियों का सनातन धर्म पति के अधीन रहना ही है, वही इनका इष्टदेव है। मैं अपने पतियों से बढ़कर कभी नहीं रहती, उनसे अच्छा भोजन नहीं करती, उनसे बढ़िया वस्त्राभूषण नहीं पहनती तथा न कभी सासजी से वाद-विवाद करती हूँ। मैं सदा अपने पतियों से पहले उठती हूँ, तथा बड़े-बूढ़ों की सेवा में लगी रहती हूँ। सासजी की मैं भोजन, वस्त्र और जल आदि से सदा ही सेवा करती रहती हूँ। वस्त्र, आभूषण और भोजनादि में मैं कभी उनकी अपेक्षा अपने लिए कोई विशेषता नहीं रखती। पहले महाराज युधिष्ठिर के दस हजार दासियाँ थीं। मुझे उनके नाम, रूप, वस्त्र आदि सबका पता रहता था और इस बात का भी ध्यान रहता था कि किसने क्या काम किया है। जिस समय इन्द्रप्रस्थ में रहकर महाराज युधिष्ठिर पृथ्वी पालन करते थे, उस समय उनके साथ एक लाख घोड़े और उतने ही हाथी चलते थे। इनकी गणना और प्रबंध मैं ही करती थी।

महाराज की जो कुछ आय-व्यय और बचत होती थी, उन सबका विवरण मैं अकेली ही रखती थी। पाण्डव लोग कुटुम्ब का सारा भार मेरे ऊपर छोड़कर पूजा-पाठ में लगे रहते थे और मैं सब प्रकार का सुख छोड़कर उसकी सँभाल करती थी। सत्यभामाजी ! पतियों को अनुकूल रखने का मुझे तो यही उपाय मालूम है।" धन्य है द्रौपदी और धन्य है उसका पातिव्रत्य। आज के इस नवीन युग में जबकि परंपरागत मूल्यों का ह्रास शीघ्रता से होता जा रहा है, भारतीय नारी अपने कर्त्तव्य और धर्म से विमुख हो रही है, उच्च शिक्षा के अनेक सुअवसर, अधिकार और सुविधाओं का ज्ञान, वैषयिक सुखों का आकर्षण, नारी-जीवन सुधारने की महत्वाकांक्षा, राजनैतिक और सामाजिक जीवन में दिखाये हुए नये तत्त्व, आर्थिक समस्याओं का दबाव इत्यादि नाना कारणों से स्त्रियों के जीवन में प्राचीन काल से जो एक सन्तुलन था वह आज विचित्र हो रहा है—ऐसे समय में नारी को द्रौपदी के आदर्शों पर चलने की आवश्यकता है अन्यथा इन आदर्श विहीन द्रौपदियों की रक्षा कोई कृष्ण नहीं कर सकता। कारण यह है कि भारत का व्यक्तित्व उसके शील पर आधारित है। सच्ची शिक्षा का अर्थ है शीलनिर्माण। प्राचीन भारतीय नारियों में ऐसे मनोभाव रहने के कारण ही भारतीय समाज शताब्दियों से अडिग रूप से रक्षित हुआ है। जब कौरवों की सभा में दुष्ट दुःशासन ने इन्हें नंगी करना चाहा और सभासदों में से किसी की हिम्मत न हुई कि इस अमानुषी अत्याचार को रोके, उस समय अपनी लाज बचाने का कोई दूसरा उपाय न देख इन्होंने अत्यंत आतुर होकर भगवान श्रीकृष्ण को पुकारा—

गोविन्द द्वारिकावासिन कृष्ण गोपीजनप्रिय ॥
कौरवै परिभूतां मां किं न जानासि केशव।
हे नाथ हे रमानाथ व्रजनाथार्त्तिनाशन ॥
कौरवार्णवमग्नां मामुद्धरस्व जनार्दन।

कृष्ण कृष्ण महायोगिन् विश्वात्मन् विश्वभावन् ॥
प्रपन्नां पाहि गोविन्द कुरुमध्येऽवसीदतीम्।
(महाभारत, सभापर्व ६८/४१-४४)।

भारत के गौरव अर्थात् शील की रक्षा के लिए त्रैलोक्य का अधिपति नंगे पांव द्वारका से दौड़कर आया और धर्मरूप से द्रौपदी के वस्त्रों में छिपकर उसकी लाज बचायी। उपस्थित सभासदों ने भगवद्भक्ति एवं पातिव्रत का अदभुद चमत्कार देखा।

द्यूत की शर्त्त के अनुसार पाण्डवों को वनवास प्राप्त हुआ। द्रौपदी भी साथ में थी। जंगल में भी दुर्योधन ने द्रौपदी को अनेक कष्ट पहुँचाये। द्रौपदी का आतिथ्य स्वीकार करने के लिए दुर्योधन ने क्रोध की साक्षात् मूर्ति दुर्वासा को ६० हजार शिष्यों के साथ भेजा, किन्तु श्रीकृष्ण ने वहाँ भी द्रौपदी के कष्ट का निवारण किया। जयद्रथ ने पाण्डवों की अनुपस्थिति में द्रौपदी का अपहरण किया, पर वह पाण्डवों द्वारा पराजित हुआ।

देवी द्रौपदी में क्षत्रियोचित तेज और भक्तोचित क्षमा दोनों का अभूतपूर्व सम्मिश्रण दृष्टिगोचर होता है। द्रौपदी के जिन लंबे-लंबे, काले बालों का कुछ ही दिन पहले राजसूय यज्ञ में अवभृथ स्नान के समय मन्त्रपूत जल से अभिषेक किया गया था, उन्हीं बालों का दुष्ट दुःशासन के द्वारा भरी सभा में खींचा जाना द्रौपदी को कभी नहीं भूला। पाण्डवों का अज्ञातवास पूर्ण हो जाने पर वे द्रौपदी के साथ हस्तिनापुर लौट आये। श्रीकृष्ण तथा युधिष्ठिर ने दुर्योधन से मेल-मिलाप करने के लिए प्रयास करना चाहा। किन्तु कौरवों द्वारा किये गये अपमान के बदले की भावना द्रौपदी के हृदय में शूल की तरह चुभ रही थी। उसने श्रीकृष्ण तथा युधिष्ठिर को फटकारते हुए कहा कि 'तुम्हारे पुरुषत्व को धिक्कार है। तुम सभी कायर पुरुष हो। यदि क्षत्रिय होते तो द्रौपदी राजसभा में इस तरह अपमानित न की गयी होती। अतः कौरवों के साथ संधि करने से तो मृत्यु का वरण कर लेना अच्छा है।' दुःशासन द्वारा खींचे गये अपने बालों को दिखाते हुए द्रौपदी ने श्रीकृष्ण से कहा – 'कृष्ण ! मैंने कौरवों के प्रति द्वेषाग्नि को तेरह वर्षों तक अपने हृदय में एक एक साँस गिन-कर इसी आशा से प्रज्वलित कर रखा है कि मेरे पति मेरे अपमान का बदला अवश्य लेंगे, किन्तु मैं इस अग्नि में जली जा रही हूँ और तुम संधि-संधि चिल्ला रहे हो तथा युद्ध टालकर मेरे हृदय में उद्दीप्त अग्नि को शान्त करना चाहते हो ? कृष्ण ! पाण्डवों को सुना दो कि ऐसा होना असम्भव है। मैं क्षत्रिय राजा द्रुपद की कन्या हूँ, मेरी भी नसों में क्षात्र-तेज का उष्ण रक्त प्रवाहित हो रहा है। यदि युद्ध रोकने की चेष्टा की गयी तो मेरे पिता द्रुपद तथा अपने पाँचों पुत्रों के साथ मैं स्वयं कौरवों से लड़कर अपने अपमान का ही नहीं, अपितु स्त्री-जाति के अपमान का बदला लूँगी। तभी मुझे शान्ति मिलेगी। यदि मैं युद्ध में मृत्यु को भी प्राप्त हो जाऊँगी तो मुझे इसका कोई दुःख नहीं होगा। अपमान का जीवन जीने से युद्ध में मृत्यु को वरण कर लेना अच्छा है।[2]

द्रौपदी यह जानती थी कि संधि से दुर्योधन राज्य प्राप्त करेगा तो वह अनीति का ही समर्थक रहेगा और अनीति तथा अधर्म की स्थापना होना विनाश का मूल है। इससे भारतीय आर्य संस्कृति विध्वंस हो जायगी। इसलिए आततायी तथा अत्याचारी को अवश्य दण्ड मिलना चाहिए, अन्यथा अन्याय और अनाचार को आश्रय-प्रश्रय देने से दुष्टों को बल मिलेगा जिससे न केवल स्त्री-जाति का अपभान होगा अपितु सारा मानव समाज कलङ्कित हा जायगा। यह था क्षत्राणी द्रौपदी के आक्रोश का चरम बिन्दु। अन्याय, अत्याचार तथा अधर्म, अनीति के समक्ष द्रौपदी कभी नहीं

झुकी। द्रौपदी के उद्योग से महाभारत का संग्राम हुआ। भला, पतिव्रता पीड़ित नारी की हाय किसको नहीं खा लेगी? महाभारत-युद्ध में जो कौरवों का सर्वनाश हुआ, उसका मूल सती द्रौपदी का अपमान ही तो था?

क्षत्रियोचित तेज के साथ-साथ भक्तोचित क्षमा भी द्रौपदी में अपूर्व थी। अपने निरीह बच्चे की हत्या अश्वत्थामा द्वारा सुनकर भीमसेन अश्वत्थामा के वध के लिए उद्यत होते हैं, किन्तु द्रौपदी का हृदय द्रवित हो उठा और उसने कहा 'यह गुरुपुत्र है। द्रोणाचार्य आपके गुरु हैं, इसलिए यह अवध्य है।'[1] यदि इसका वध होता है तो कृपी भी मेरी ही तरह पुत्र-विलाप से व्यथित होंगी'—

मुच्यतां मुच्यताशेष ब्राह्मणो नितरां गुरुः ॥
मा रोदीदस्य जननी गौतमी पतिदेवता।
यथाहं मृतवत्साऽऽर्त्ता रोदिम्यश्रुमुखी मुहुः ॥२॥

सचमुच भारतीय संस्कृति के अनुसार आदर्श नारी सर्वप्रथम आदर्श माता है; बाद में है आदर्श पत्नी और इन दोनों ही आदर्श रूपों की जीवंत प्रतीक है भारतीय नारी देवी द्रौपदी।

१. (म० उ० ८२/४०-४१
२. (महा० सौ० अध्याय १५-१६)
३. श्रीमद्भागवत,) १/७/४३, ४७)

# विवेक चूड़ामणि

भाष्यकार—स्वामी वेदान्तानन्द
अनुवादक—डॉ० आशीष बनर्जी

स्थूलस्य सम्भवजरामरणानि धर्माः
स्थौल्यादयो बहुविधाः शिशुतावयस्थाः।
वर्णाश्रमादिनियमा बहुधा यमाः स्युः
पूजावमान बहुमानमुखा विशेषाः ॥ ९१

जन्म, जरा एवं मृत्यु—ये सभी स्थूल देह के धर्म हैं। स्थूलता-कृशता, शैशव-यौवन आदि अवस्था, चारों वर्ण, चारों आश्रमों, नियम समूह, विविध रोग, मान-अपमान एवं बहु मान आदि स्थूलदेह को आश्रय किये रहते हैं। (देहाभिमानी जीव स्थूल देह के धर्म समूह को अपना जान कर सुख-दुःखादि का भोग करता है।)

जन्म, अस्तित्व (थोड़े समय के लिए वर्तमान रहना), बुद्धि, परिणाम, क्षय और विनाश—देह के ये षड्विध विकार होते हैं। "जायते अस्ति वर्धते विपरिणमते अपक्षीयते विनश्यति"—यास्क ऋषि के मतानुसार।

अब सूक्ष्म शरीर का वर्णन आरम्भ होता है (९२-१०० श्लोक):

बुद्धीन्द्रियाणि श्रवणं त्वगक्षि
घ्राणं च जिह्वा विषयावबोधनात्।
वाक्पाणिपादं गुदमप्युपस्थः
कर्मेन्द्रियाणि प्रवणेन कर्मसु ॥ ९२

कर्ण, त्वक, चक्षु, नासिका और रसना द्वारा विषय का ज्ञान होता है अतः उन्हें ज्ञानेन्द्रिय कहते हैं। और कर्म समूह में प्रवृत्ति होने के कारण मुख (वाक्शक्ति), हाथ पैर, मलद्वार और लिंग को कर्मेन्द्रिय कहा जाता है।

निगद्यतेऽन्तःकरणं मनोधी—
रहंकृतिश्चित्तमिति स्ववृत्तिभिः।
मनस्तु सङ्कल्पविकल्पनादिभि—
र्बुद्धिः पदार्थाध्यवसायधर्मतः। ९३
अत्राभिमानाद्वहमित्यहङ्कृतिः
स्वार्थानुसन्धानगुणेन चित्तम्। ९४

अन्तःकरण अपनी विभिन्न वृत्तियों के अनुसार मन, बुद्धि, अहंकार एवं चित्त इन चारों नामों द्वारा कथित होता है। अन्तःकरण जब संकल्प और विकल्प करता है तब उसे मन कहते हैं; किसी वस्तु को 'ये यह है' इस प्रकार जब निश्चय करता है तो उसे बुद्धि कहते हैं; देहादि में जब 'मैं यह हूँ' इस प्रकार का अभिमान देखा जाता है, तब अन्तःकरण को अहंकार कहते हैं, तथा जब अपनी सुखदायी वस्तुओं की चिन्ता करता है तब उसे चित्त कहते हैं।

संकल्प-विकल्प—किसी वस्तु को 'यह ऐसा है, यह ऐसा नहीं है' इस प्रकार की चिन्ता।

प्राणोऽपानव्यानोदानसमाना भवत्यसौ प्राणः।
स्वयमेव वृत्तिभेदाद्विकृतिभेदात्सुवर्णसलिलादिवत्॥ ९५

सुवर्ण और जल के समान वृत्तिभेद और विकृति भेद में एक प्राण ही प्राण, अपान, व्यान उदान और समान – इन पंच वायु रूप में परिणत होता है।

—सुवर्ण का विकृति भेद—एक ही सुवर्ण हार, कंगन आदि रूप में परिणत होता है।

—जल का वृत्तिभेद एक ही जल फेन, तरंग, बुदबुद आदि में परिणत होता है।

—देह में पंच वायु निम्न स्थानों में स्थित होता है –प्राण वायु हृदय में, अपान वायु मल की नली में, समान वायु नाभि में, उदान कण्ठ-में देश एवं व्यान समस्त देह में।

वागादिपञ्च श्रवणादिपञ्च
प्राणादिपञ्चाभ्रमुखानि पञ्च।
बुद्ध्याद्यविद्यापि च कामकर्मणी
पुर्यष्टकं सूक्ष्मशरीरमाहुः॥ ९६

पंच कर्मेन्द्रिय, पंच ज्ञानेन्द्रिय पंच वायु, पंच महाभूत, अन्तःकरण की बुद्धि आदि, चार भेद, अविद्या, काम एवं कर्म—इन आठ पुरी को सूक्ष्म शरीर कहते हैं।

इदं शरीरं शृणु सूक्ष्मसंज्ञितं
लिङ्गं त्वपञ्चीकृतभूतसम्भवम्।
सवासनं कर्मफलानुभावकं
स्वाज्ञानतोऽनादिरूपाधिरात्मनः॥ ९७

सुनो ! इस सूक्ष्म शरीर को ही लिंग शरीर कहा जाता है। (कर्म समूह सूक्ष्म रूप में इसमें लीन रहने के कारण इसका नाम लिंग शरीर है।) यह अपंचीकृत पंच महाभूतों से उत्पन्न, वासना युक्त, कर्मफल का उत्पादक एवं स्वस्वरूप के ज्ञान के अभाववश जीव की अनादि उपाधि है।

स्मृति और वासना लिंगशरीर में वर्तमान रहते हैं।

स्वप्न में सूक्ष्म शरीर विशेष रूप से प्रकाशित होता है—

स्वप्नो भवत्यस्य विभक्त्यवस्था
स्वमात्रशेषेण विभाति यत्र।
स्वप्ने तु बुद्धिः स्वयमेव जाग्रत्-
कालीननानाविध वासनाभिः
कर्त्रादिभावं प्रतिपद्य राजते
यत्र स्वयंज्योतिरयं परमात्मा॥ ९८

धीमात्रकोपाधिरशेष साक्षी
न लिप्यते तत्कृतकर्मलेशैः ।
यस्मादसङ्गस्तत एव कर्मभि-
र्न लिप्यते किञ्चिदुपाधिना कृतैः ॥ ९९

स्वप्न, इस सूक्ष्मशरीर में अभिमानी जीव के जाग्रत से भिन्न अवस्था है। स्वप्न में जीव बाह्य-करण शून्य होकर स्वयं प्रकाशित होता है। स्वप्नावस्था में बुद्धि स्वयं ही जाग्रत कालीन नाना वासनाओं की सहायता से कर्त्ता-कर्म-करण आदि भाव प्राप्त होकर प्रकाशित होता है। स्वप्न में सूक्ष्म शरीर का साक्षी परमात्मा केवल बुद्धि मात्र उपाधि से युक्त रहकर बुद्धि कृत कर्म के द्वारा लिप्त नहीं होता। चूँकि आत्मा असंग है अतः बुद्धि रूप उपाधि द्वारा कृत कर्मों के द्वारा किंचित भी लिप्त नहीं होता है। ९८-९९

"यद्वैः किञ्चित पश्यतानन्वागतस्तेन भवति असंगो ध्यं पुरुषः।"

—स्वप्न में जो कुछ दर्शन होता है वह उसके द्वारा लिप्त नहीं होता; क्योंकि, यह पुरुष असंग है।" वृ, ४।३।१५

बुद्धि पद यहाँ 'अन्तःकरण' के अर्थ में ग्रहण किया गया है।

स्वप्न में 'अन्तःकरण' बाह्य जगत की सहायता बिना विचित्र रूप से प्रकाशित होता है।

सर्वव्यापृतिकरणं लिङ्गमिदं स्याच्चिदात्मनः पुंसः ।
वास्यादिकमिव तक्ष्णस्तेनैवात्मा भवत्यसङ्गोऽयम् ॥ १००

बढ़ई जिस प्रकार बसूला आदि द्वारा अपना कार्य करता है, उसी प्रकार चैतन्य स्वरूप आत्मा के समस्त व्यापारों का कारण लिंगशरीर है। अपने यंत्रों से बढ़ई सदैव भिन्न है, उसी प्रकार यह आत्मा लिंगशरीर से भिन्न रहता है। १००

अन्धत्वमन्धत्वपटुत्व धर्माः
सौगुण्यवैगुण्य वशाद्धि चक्षुषः ।
बाधिर्यमूकत्व मुखास्तथैव
श्रोत्रादिधर्मा न तु वेत्तुरात्मनः ॥ १०१

नेत्रों के दोष अथवा गुण से मनुष्य अन्धापन, धुँधलापन अथवा स्पष्ट दृष्टि सम्पन्न होता है। उसी प्रकार कर्ण आदि इन्द्रियों के दोष से बहरापन, गूँगापन आदि होता है। अन्धापन आदि दोष या गुण इनके ज्ञाता आत्मा के नहीं हैं।

"सूर्यो यथा सर्वलोकस्य चक्षुर्न लिप्यते चाक्षुषैर्बाह्यदोषैः
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा न लिप्यते लोकदुःखेन बाह्यः।"
क,।२।२।११

"सूर्य जिस प्रकार जीव मात्र के दर्शन का हेतु होकर भी पाप अथवा अशुचि दर्शनादि रूप बाह्य दोष द्वारा लिप्त नहीं होता, उसी प्रकार निखिल जीव की आत्मा एक होते हुए भी लौकिक दुःख में लिप्त नहीं होती; क्योंकि आत्मा इनसे अलग है।"

उच्छ्वासनिःश्वासविजृम्भणक्षुत्-
प्रस्पन्दनाद्यत्क्रमणादिकाः क्रियाः ।
प्राणादिकर्माणि वदन्ति तज्ज्ञाः
प्राणस्य धर्मावशनापिपासे ॥ १०३

श्वास-प्रश्वास, जमुहाई, छींक, नाक अथवा कान के मल का त्याग प्राणादि पंच वायु के कार्य है; तत्वज्ञ व्यक्ति ऐसा ही कहते हैं। क्षुधा और पिपासा भी प्राण के ही धर्म हैं।

अन्तःकरणमेतेषु चक्षुरादिषु वर्त्मसु ।
अहमित्यभिमानेन तिष्ठत्याभासतेजसा ॥ १०३

अन्तःकरण आत्मा के तेज से उद्भासित होकर नेत्र आदि ज्ञानेन्द्रिय एवं कर्मेन्द्रिय समूह एवं देह में, 'मैं पन' की वृत्ति (मैं देखता हूँ, करता हूँ इत्यादि) को प्रकट कर स्थिर रहता है।

# ईश्वरीय प्रेम

—विवेक कुमार
राजेन्द्र सरोवर, छपरा

चरक ने कहा—
चर, चर
अर्थात्
चलते रहो, चलते रहो;
महापुरुष ने कहा—
चरैवेति चरैवेति,
चलते रहो चलते रहो;
मन ने पूछा—
कब तक ?
कहाँ तक ?
क्यों ?
कैसे ?
उद्देश्य के बिना विधेय कैसे ?
त्याग के बिना प्रेम कैसा ?
त्याग के बिना सेवा कैसी ?
सेवा के बिना प्रेम कैसा ?
मंजिल के बिना राह कैसी ?
यह मंजिल है कहाँ ?
यह उद्देश्य मिलेगा कहाँ ?
मोह में ?
ये कामिनी-कांचन करते हैं आकर्षित,
ये चित्त को करते हैं व्याकुल,
पर इनमें स्थायित्व कहाँ ?
इस सुख का आनन्द
क्षणिक है,
यह लुभाता है अवश्य, पर
भ्रामक है,
यह नहीं है मंजिल,
यह नहीं है उद्देश्य,
इस जीवन रूपी महा-यात्रा का
यह नहीं है अंत
यह हो सकता नहीं इसका अंत;
तब ?
प्रेम !
ईश्वरीय प्रेम !
जो है निर्मल, स्वच्छ
पावन, परम पावन
यह स्थायी है
यह चिरंतन है
यह अविराम है
यह अभिराम है;
सांसारिक सुख
पीछा करने पर
दौड़ाता है, लुभाता है, और
लुप्त हो जाता है,
यह झलक दिखाता है, और
समाप्त हो जाता है,
समाप्त कर देता है
व्यक्ति को एक महा-यात्री को।
और ईश्वरीय प्रेम ?
हमारे एक पग बढ़ाने पर
वह दस कदम आगे आ जाता है,
दौड़ कर हमें
गोद में ले लेता है
सराबोर कर देता है
अपने पतित-पावन
प्रेम-रस से।
यह प्रेम-रस अद्भुत है
यह कभी घटता नहीं
कभी समाप्त नहीं होता
निश्चय ही यह श्रेष्ठतम है
निश्चय ही यह कल्याणकारी है
निश्चय ही यह प्राप्तव्य है।

# स्वामी अद्भुतानन्द की जीवन-कथा

—चन्द्रशेखर चट्टोपाध्याय
अनुवादक स्वामी विदेहात्मानन्द

साधक-लाटू के बारे में शशी महाराज द्वारा वर्णित भी एक प्रसंग है, लगता है यह उसी दिन की घटना होगी—"एक दिन ठाकुर ने लाटू को सिर सहलाने को कहा। कुछ देर बाद ही देखता हूँ कि लाटू का हाथ रुक गया है, देह स्थिर और वह गहन ध्यान में मग्न है। मैंने दो-चार बार उसे पुकारा पर कोई उत्तर नहीं मिला। देह पर हाथ लगाकर देखा तो भी कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई। तब ठाकुर बोले, 'उसे इस समय परेशान मत कर। इस समय उसका मन क्या इस जगत् में है?' ठाकुर के आदेश पर मैंने उसे और नहीं छेड़ा। उसी के समीप बैठकर ठाकुर के सिर पर हाथ फेरने लगा।"

यहाँ पर हम बलराम-मन्दिर का एक वार्तालाप उद्धृत करते हैं। इससे समाधि के भेदों का ज्ञान प्राप्त होगा।

एक भक्त – 'महाराज, जड़ समाधि से क्या तात्पर्य है?"

लाटू महाराज—"वे कहा करते थे, 'जिस समाधि में मैं का लोप हो जाता है वह जड़-समाधि है, जैसा कि ज्ञानी को होता है। और भी एक प्रकार की समाधि है, जिसमें सेव्य-सेवक का मैं रह जाता है, रस-रसिक का मैं रह जाता है आस्वाद्य-आस्वादक का मैं रह जाता है। इसका नाम है चेतन- समाधि। चेतन समाधि में ईश्वर सेव्य और भक्त सेवक है, ईश्वर रसस्वरूप और भक्त रसिक है, ईश्वर आस्वाद्य और भक्त आस्वादक है। चेतन समाधि में निर्विकल्प अवस्था नहीं होती।"

भक्त—"निर्विकल्प समाधि क्या है, महाराज?"

लाटू महाराज—"तुम्हारे जैसा बचकाना आदमी मैंने नहीं देखा। अरे समाधि की बात क्या मुख से कही जाती है, जो मैं तुम्हें निर्विकल्प समाधि की बात समझाऊँ। वह सब कोई किसी को कह नहीं सकता। वे बताया करते थे, 'निर्विकल्प समाधि में आदमी इक्कीस दिन रह सकता है, उसके बाद देह त्याग हो जाता है। वहाँ से अधिकांश लोग लौटकर नहीं आ सकते। केवल जो अवतार या ईश्वर कोटि हैं वे ही निर्विकल्प अवस्था के बाद (जीवों के उपकारार्थ या लोक-शिक्षा के लिए) उतर कर आ सकते हैं।' एक बार तो काशीपुर में लोरेन भाई को वैसी ही समाधि हुई थी। निरंजन भाई उसे देख ठाकुर के पास जाकर बोले, 'लोरेन बाबू मर गये। उनकी देह ठण्ढी हो गयी है।' वे (ठाकुर) तो निरंजन भाई की बात सुनकर हँस पड़े। जब लोरेन भाई को फिर होश हुआ तो स्वयं ही अपना शरीर ढूँढ़ने पर उन्हें मिला नहीं। किसी को सामने देखकर उन्होंने कहा, 'मेरा शरीर कहाँ है?' उस व्यक्ति ने तब उनकी देह पर हाथ लगाकर दिखा दिया, 'यह रही।' तब लोरेनभाई की विदेह आत्मा को पुनः देह की प्राप्ति हो गयी। फिर एक बार माँ (श्री सारदा देवी) को भी (वृन्दावन में) ऐसा ही भाव हुआ था। वहाँ उन्हें भी ढूँढ़ने पर शरीर

का पता नहीं मिल रहा था। बाद में सब ठीक ठीक हो गया।"

समाधि के इन प्रकार-भेदों को समझकर और परवर्ती काल में लाटू महाराज के मुख की बातें सुनकर हमारे मन में ऐसी धारणा हुई कि काशीपुर में लाटू महाराज को चेतन-समाधि की उपलब्धि हुई थी।

किसी भी तरह की (जड़ या चेतन) समाधि की अनुभूति के पथ पर साधक में कई अलौकिक शक्तियों (शास्त्रों में जिन्हें सिद्धि या योगविभूति कहते हैं) का प्रादुर्भाव होता है। इनमें अन्तर्यामित्व और अनागत-ज्ञातृत्व ही प्रमुख हैं। ऐसा लगता है कि उन दिनों उनमें वे ही सब शक्तियाँ प्रकट हुई थीं।

एक दिन काशीपुर के उद्यान में उन्होंने नरेन्द्र नाथ से कहा था –"देख भाई लोरेन ! केशवबाबू टाउन हाल में जैसा लेक्चर देते हैं, भाई तू भी वैसा ही लेक्चर करना। और मैं तुम्हारे लिए एक सुराही में पानी लेकर बैठा रहूँगा।" ये बातें भविष्य में सत्य सिद्ध हुई थीं। अमरिका से स्वामी विवेकानन्द ने एक पत्र में लिखा था, "उनकी इच्छा पूर्ण कर रहा हूँ, यहाँ पर मैं लेक्चर देते हुए भ्रमण कर रहा हूँ। खेद इस बात का है कि लेक्चर के समय लाटू यहाँ उपस्थित नहीं रह सका (श्री महेन्द्रनाथ दत्त कथित) पर कलकत्ते के व्याख्यान में लाटू की भविष्यवाणी अक्षरशः प्रतिफलित हुई थी।

काशीपुर के उद्यान में रहते समय एक दिन बूढ़े गोपाल दादा के मन में साधु संन्यासियों को गैरिक वस्त्र और रुद्राक्ष के माले दान करने की इच्छा हुई। यह सुनकर ठाकुर ने कहा "यहाँ के ये युवा-सेवक हजारी हैं अर्थात् इनमें से प्रत्येक हजार साधुओं की बराबरी का है। तुम इन्हीं का सत्कार करो।" गोपाल दादा ने वसा ही किया और उनके द्वारा लाये गये वस्त्रों में से ठाकुर ने अपने हाथ से वहाँ उपस्थित सेवकों को एक एक गैरिक वस्त्र और एक एक रुद्राक्ष की माला दान की। सेवक लाटू ने उसे मस्तक पर धारण किया और उसी दिन से अपने मन को गैरिक रंग में रंजित कर डाला। (यह प्रसंग श्री वैकुण्ठनाथ सान्याल से सुनने का मिला है।)

परवर्ती काल में लाटू महराज से वार्तालाप में कुछ ऐसी घटनाएँ मिली हैं, जो काशीपुर में घटित हुई थीं।

"काशीपुर में ठाकुर का जन्मोत्सव बड़े संक्षेप में मनाया गया था। उस दिन लोरेन भाई का गाना हुआ और सुरेन्दर बाबू ने एक अच्छी मोटी-सी माला लाकर ठाकुर के गले में पहना दी थी। बलराम बाबू और मास्टर महाशय ने एक धोती और कुरता दिया। फिर न जाने किसने एक जोड़ी चप्पल भी ला दी थी, जो चोरी चली गयी। उस समय जूतों की जो जोड़ी लायी गयी थी, उसी की अब भी मठ में पूजा होती है।

"जानते हो, एक दिन उन्होंने अपनी एक फोटो देखकर कहा था, 'यह जो देख रहा हूँ, महायोगी की मूर्ति है। इसकी पूजा करूँगा, जा फूल ले आ।' भवनाथभाई ने ठाकुर के हाथ में फूल दिये और उन्होंने अपनी फोटो की स्वयं ही पूजा की। (यह घटना वस्तुतः दक्षिणेश्वर मे हुई थी, परन्तु लाटू महाराज उसे काशीपुर की निम्नलिखित घटना के साथ कह गये थे) एक अन्य दिन उन्होंने अपनी एक फोटो माताजी को दिखाते हुए कहा, 'देखोगी, एक दिन इसकी घर-घर नित्यपूजा होगी।' अब तो देख रहा हूँ कि उनकी बात हू-ब-हू मिल रही है। ... एक दिन वे रामलाल दादा के साथ ऊपर से नीचे उतरकर बगीचे में घूमने गये। उस समय नीचे गिरीश बाबू, राम बाबू, अतुल बाबू,

अक्षय मास्टर, हरीश भाई—ये सभी लोग थे। मैं और शरत् भाई उस समय ऊपर उनका तकिया, बिछौना, रजाई, गद्दी आदि सब धूप में डाल रहे थे। सुना है कि उस दिन उन्होंने सभी भक्तों को 'तुम लोगों का चैतन्य हो' कहकर आशीर्वाद दिया था, और उन लोगों को छू दिया था।" (काँकुड़-गाछी के योगोद्यान में अब भी १ जनवरी को उसका उत्सव होता है।) यह बात सुनकर एक भक्त ने पूछा—"उस दिन आप ऊपर से उतर क्यों नहीं आये? सुना है कि उस दिन वे 'कल्पतरु' हुए थे—जिसने जो चाहा उसे वही आशीर्वाद प्रदान किया था।" इस पर लाटू महराज ने उत्तर दिया—"उन्होंने तो आशीर्वाद देकर हमलोगों को परिपूर्ण कर दिया था। उनसे और क्या माँगते? ·· ···· ···· दोल के दिन सबने मिलकर उनके चरणों में अबीर दिया। उन्होंने हम सबको आशीर्वाद दिया। उस दिन ऊन्होंने लोरेन भाई से कहा, 'तू जिसके लिए रो रहा है, तुझे वही दूँगा। परन्तु पहले तू मेरा काम कर। तेरे लिए मैंने इनने दिनों तक कष्ट उठाया, तू थोड़ा इनके (गुरुभाइयों तथा जनसाधारण के) लिए कष्ट उठा। मैंने सोलह आने परिश्रम किया है, तू एक आना मेहनत कर—तेरे लिए गद्दी कर दूँगा।' इसीलिए तो उनके अन्तर्धान हो जाने पर लोरेन-भाई ने हम सब को लेकर मठ बनाया। ··· ··· ··· शिवरात्रि के दिन ठाकुर ने रात भर शिवनाम सुना। लोरेन भाई उस दिन धूनी जलाकर काशीपुर के उद्यान में बैठ गया। वहीं पर सबने मिलकर रातभर शिवपूजा और कीर्तन किया। उस रात उन्होंने कहा था, 'देख! शिव हैं महायोगी, महाज्ञानी, महाप्रेमी, और महात्यागी। उन्होंने सच्चिदानन्द-सागर से तीन चुल्लू जल पान किया था, इसीलिए उनका नाम भोला महेश्वर है। शुकदेव महाज्ञानी, महाप्रेमी तथा संन्यासियों के राजा हैं; उन्होंने उसी सागर का जल स्पर्श किया था। और देवर्षि नारद ने दूर से ही उस सच्चिदानन्द-सागर को देखा था, इसीलिए वे भक्तश्रेष्ठ हैं। वहाँ की कण मात्र हवा भी जीव के शरीर में लग जाय तो जीव गल जाता है। दर्शन-स्पर्शन तो दूर की बात है! ··· उनके (ठाकुर के) लिए प्रायोपवेशन करने को माताजी एक दिन तारकेश्वर गयीं। वहाँ जाते समय माँ को उँगली हिलाकर उन्होंने बता दिया था कि इससे कुछ न होगा। ·· एक दिन तो लोरेनभाई ने ध्यान में बैठकर एक गुरु-भाई से कहा, 'मुझे छू तो।' उसने ज्योंही स्पर्श किया त्योंही उसकी देह में भी न जाने क्या होने लगा। ठाकुर ऊपर के कमरे से ही सारी बात समझ गये और बोले, 'उसे (अर्थात् लोरेनभाई को) ऊपर बुला ला तो!' लोरेन भाई के निकट आने पर वे बोले, 'क्या हो रहा था जी? पहले थोड़ा जमा करो, तभी तो खर्च करोगे। जमा होने के पहले ही खर्च कर रहे हो, ऐसा करने से कैसे चलेगा?... एक दिन तो कालीभाई (स्वामी अभेदानन्द) ने ठाकुर से बुद्धदेव के बारे में प्रश्न किया। उन दिनों कालीभाई के मन में ऐसी धारणा थी कि बुद्धदेव ईश्वर नहीं मानते थे। उसी बात को लेकर एक दिन बड़ा तर्क हुआ। इस पर वे बोले, 'बुद्धदेव नास्तिक क्यों होंगे जी! उन्होंने अपने स्वरूप को देखा था, वहाँ अस्ति-नास्ति के बीच की अवस्था है।' काशीपुर में एक दिन रामबाबू ठाकुर के पास जाना चाहते थे। निरंजन भाई ने उन्हें नहीं जाने दिया। तब उन्होंने मेरे हाथ में थोड़ी मिठाई और माला देते हुए कहा, 'अरे, इसे ऊपर से प्रसाद करके ला दे।' ऐसा कहते सुनकर मेरे मन में बड़ा दुःख हुआ। मैंने निरंजन भाई से कहा, 'इन्हें ऊपर जाने दो न भाई! आपस में भी क्या यह सब नियम लागू होगा?' परन्तु निरंजन भाई ने मेरी बात पर ध्यान नहीं दिया। अतः मैं बोला, 'श्यामपुकुर में उस दिन

जब दानाकाली विनोदिनी को साहब के वेष में ले आया, तो तुमने उसको छोड़ दिया और अब इनके जैसे व्यक्ति को नहीं छोड़ना चाहते !' तब निरंजनभाई के मन में न जाने क्या विचार आया कि उसने रामबाबू से कहा, आप ऊपर जाइए।' उस दिन ऊपर जाने पर वे (ठाकुर) मुझसे बोले, 'देख, कभी किसी के दोष मत देखना, लोगों के सिर्फ गुण ही देखना।' उनकी बात पर मुझे बड़ा दुःख हुआ। मैं फिर उनके (निरंजनभाई) पास आकर बोला, 'भाई, मेरे जैसे मूर्ख की बात पर बुरा मत मानना।' एक दिन तो काशीपुर में ठाकुर ने मुझसे कहा, अरे, गिरीश आया है, उसे तम्बाकू सजाकर पिला।' फिर बोले, 'जल्दी से जाकर फागू की दूकान से गरम कचौड़ी तलवा कर ले आ।' मैंने वैसा ही किया। उस दिन उन्होंने स्वयं ही गिरीश बाबू के लिए एक गिलास जल ढाल दिया। गिरीशबाबू की बड़ी इच्छा थी कि एक वर्ष उनकी (ठाकुर की) सेवा करूँ। ठीक एक वर्ष उन्होंने (ठाकुर ने) उनकी सेवा ग्रहण की थी। गिरीशबाबू हम लोगों से कहा करते थे, ठाकुर ने वृद्धावस्था में मेरे ऊपर कृपा की। यदि युवावस्था में उनकी कृपा मिल जाती तो संन्यास क्या चीज है यह एक बार दिखा देता।' जिसमें पाँच चवन्नी पाँच आने विश्वास है उसी गिरीशबाबू) के मुख से ऐसी बात शोभा देती है। परन्तु हमारे तुम्हारे मुख से ऐसी बात भला कैसे अच्छी लगेगी ? एक दिन वे (ठाकुर) मुझसे बोले, 'हरीश का क्या समाचार है ? यहाँ वह क्यों नहीं आता ? एक बार उसके घर जाकर पता लगाना। और लौटते समय नित्यगोपाल, तारक आदि को आने के लिए कहना।' (उन दिनों तारक बाबू काँकुड़गाछी के उद्यान में रहकर साधना में लगे थे)। नित्यगोपाल को ठाकुर ने उपदेशदान करने को कहा। पर नित्यगोपाल भय के कारण राजी नहीं हो रहा था— यह देखकर ठकुर ने कहा, 'मुझे देखकर तुझे कष्ट नहीं होता क्या ? मैं तो बोलते बोलते ही गया। अब तुम उपदेश (दीक्षा) दो, भय की कोई बात नहीं। यदि कोई दोष हुआ तो वह मेरा होगा।' ···इसी तरह की एक बात उन्होंने विजय बाबू (श्री विजयकृष्ण गोस्वामी) को भी कही थी— 'तुम तो अद्वैत के वंश के हो, तुम्हारे उपदेश देने पर कोई दोष नहीं होगा।' एक दिन तो सुरेन्दर बाबू ने उनसे मान करते हुए कहा, 'दूसरों (अन्य भक्तों) से पैसा माँगने की इन लोगों को क्या जरूरत थी ? मुझे ही तो ये लोग जना सकते थे ?' इस पर ठाकुर बोले, 'तुम तो दे ही रहे हो।' फिर सुरेन्दर बाबू के नीचे उतर जाने पर वे केदार बाबू (वृद्ध भक्त केदार चटर्जी) से बोले, 'जाओ, एक बार सुरेश को समझाकर कहो, बड़बड़ाने से मना करना।' एक दिन तो उन्होंने शशी भाई को बड़ा स्नेह करते हुए कहा, 'देख, तुम लोगों ने इस सेवा के द्वारा मुझे बाँध रखा है, तुम लोग यदि कहो तो एक बार उधर का देख आऊँ।' यह बात माताजी के कानों में पड़ी। उन्होंने योगीन भाई के द्वारा हम लोगों से कहला भेजा कि बाहर के किसी को भी आज ठाकुर से न मिलने दिया जाय। उस दिन दोपहर के समय किसी भी बाहरी व्यक्ति को ठाकुर के पास नहीं जाने दिया गया। परन्तु एक पगली (वह महिला श्री विजय कृष्ण गोस्वामी के साथ ठाकुर के पास आया करती थी, अत्यधिक साधक-भजन करने के कारण उसका मस्तिष्क गरम हो गया था) आकर उस दिन बड़ा तंग करने लगी। निरंजनभाई उसे ऊपर नहीं जाने देंगे और वह भी ऊपर गये बिना नहीं मानती थी। ऊपर से सन्देशा आया कि ठाकुर पगली को बुला रहे हैं। तब शशीभाई उसे ऊपर ले गये। एक दिन रामलाल (दादा) एक व्यक्ति को साथ ले आये। वे सज्जन झाड़-फूँक में पारंगत थे। सब कुछ देखकर वे बोले, 'इन्हें-झाड़-फूँक

भला क्यों कराना होगा ! इच्छा करने मात्र से ही तो वे चंगे हो सकते हैं। तो भी रामलाल (दादा) ने एक बार उनका (ठाकुर का) शरीर झाड़ देने का अनुरोध किया। परन्तु ज्योंही वे झाड़-फूँक करने को प्रस्तुत हुए कि ठाकुर उन्हें मना करते हुए बोले, 'इस प्रकार शक्ति का क्षय नहीं करना चाहिए।' एक दिन तो जबलपुर से एक व्यक्ति आये। वे बड़े नास्तिक थे, कभी किसी से प्रार्थना नहीं करते थे। वे कहते, 'जब ईश्वर ही नहीं हैं, तो फिर किसे पुकारूँगा।' उनकी बात सुनकर ठाकुर बोले, 'देखो, इस तरह प्रार्थना करने में तो तुम्हें कोई आपत्ति नहीं होगी— यदि कोई हों तो मेरा निवेदन सुनें।' ठाकुर की इस बात पर उन्होंने कहा, 'अच्छा, आप जैसा बताते हैं वैसे ही कहूँगा।' जानते हो ? वही आदमी बाद में ठाकुर का महा-भक्त हो गया। ठाकुर के पास आकर जो कोई भी उनके निर्देशानुसार चला है वही बाद में एक भक्त बन गया। काशीपुर में लोरेनभाई एक दिन ठाकुर से बोले, 'मुझे कुछ ऐसा कर दीजिए कि मैं दिन भर समाधि में रह सकूँ।' यह सुनकर उन्होंने (ठाकुर ने) कहा, 'तू तो बड़ा हीन बुद्धि है।' काशीपुर के उद्यान में एक गुरुभाई ने एक दिन मछली पकड़ने के लिए तालाब में कँटिया लगाया था। उसे देखकर मैंने उससे पूछा, 'क्यों भाई ! तुम तो वेदान्त पढ़ते हो, बताओ तो तुम्हारे किस वेद-वेदान्त में मछली को पकड़कर इस तरह पीड़ा देने की बात लिखी है ?' मेरी बात सुनकर गुरुभाई को बड़ी लज्जा आयी। मेरे सामने ही उन्होंने मछली को पानी में छोड़ दिया और बंशी तोड़कर फेंक दिया। ··· एक दिन तो वे (ठाकुर) योगीनभाई की अस्वस्थता के बारे में सुनकर बड़े दुःखी हुए और बोले, 'कहीं सेवा में त्रुटि न हो जाय, इसलिए तुम लोग अपने स्वास्थ्य की ओर ध्यान नहीं दे रहे हो; पर तुम लोगों का स्वास्थ्य बिगड़ जाने पर मेरी देखभाल कौन करेगा ? भाई तुम लोग इतनी देर से खाना-पीना मत करो।' उसके बाद से वे हममें से किसी को भी असमय खाते देखते तो बड़ा डाँटते थे। कितने ही दिन उन्होंने शशी भाई से कहा, 'अजी, जाकर नहा-खा लो। मैं अब अच्छा हूँ, मुझे इस समय कोई आवश्यकता नहीं है। जाओ भोजन कर आओ।' कितने ही दिन उन्होंने उनके हाथ से पंखा छीनकर हमारे हाथ में दिया है।...बूढ़े गोपाल दादा उन्हें औषधि खिलाया करते थे। एक दिन यह देखकर कि दवा खाने का समय बीता जा रहा है, उन्होंने (ठाकुर ने) हाथ से संकेत करके किसी से पूछा, 'वह बूढ़ा आदमी कहाँ है ?' फिर यह सुनकर कि बूढ़े गोपाल दादा सो रहे हैं, वे बड़े आनन्दित हुए और बोले, 'अहा ! कितनी रात जगा है ! थोड़ा सोये। उसे मत जगाना। बल्कि तुम्हीं दवा दे दो।' "एक दिन तो शशधर पण्डित उन्हें देखने को आये। वे आकर उनसे (ठाकुर से) बोले, 'समाधि के समय मन को एक बार शरीर पर लगाइए। इससे सारी बीमारी दूर हो जाएगी।' उनकी बात सुनकर वे (ठाकुर) कहने लगे, 'अजी, समाधि के समय मन को देह पर नहीं ला सकूँगा।"

(क्रमशः)

किसी की निन्दा मत करो। यदि दुःख-विपत्ति आये तो समझो ईश्वर तुम्हारे साथ खेल कर रहे हैं और यही समझकर दुःख में भी परम सुखी रहो। —स्वामी विवेकानन्द